श्री श्रीहरिभक्तिविलास

संक्षिप्त रागमार्गानुगीय संस्करण

व्रजविभूति
श्रीश्यामदास

श्रीश्रीराधा-मदनगोपालदेवो जयति।

श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः।

श्रीमत् श्रीकृष्णचैतन्य-चरणसरसीरुह-चञ्चरीक गौड़ेश्वराचार्य—

श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामि विरचितः।

श्रीकन्हैयालाल मिश्रकृत भाषा-टीकया समेतः।

एवं

भागवतभूषणोपाधिक-

श्रीकृष्णचन्द्र शर्म्मणा संशोधितः।

(पूर्व्वार्द्ध)

छत्रपुराधीश्वर-

श्रीमन्महाराज विश्वनाथसिंह बाहादुरस्य—

सम्पूर्ण साहाय्येन

श्रीधाम वृन्दावनस्थ

"श्रीमदनगोपाल" नामक यन्त्रे—

श्रीविश्वम्भरनाथशर्म्म व्रजवासिना

मुद्रितः प्रकाशितश्च।

सम्वत् १९६५. 1908 AD

सन् १९०८ में प्रकाशित श्रीहरिभक्तिविलास का वह मुखपृष्ठ, जिसपर श्री गोपालभट्ट गोस्वामि के लिये "गौड़ेश्वराचार्य" शब्द का प्रयोग हुआ है

❋ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यः शरणम् ❋

कलियुगपावनावतार-स्वभजनविभजन-प्रयोजनावतार-श्रीश्रीभगवच्छ्री
कृष्णचैतन्य-चरणानुचर-विश्ववैष्णवराजसभासभाजनभाजन
श्रीमद्रूप-सनातन-गोपालभट्ट-रघुनाथभट्ट-रघुनाथदास-
श्रीजीवगोस्वामिचरणानुमतवैष्णवस्मृति
श्रीश्रीहरिभक्ति-विलास
सम्मत

श्रीश्रीराधाकुण्ड-स्थित
श्रीश्रीगौड़ेश्वर-वैष्णव-सम्मिलनी

द्वारा प्रकाशित
श्रीश्रीब्रजमण्डलस्थ-सर्ववैष्णव-जनानुमोदित

श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीजी
का

व्रतोत्सव-निर्णय-पञ्चाङ्ग

सप्तषष्टितम वर्ष

श्रीगौरांगाब्द ५२२-५२३ वंगाब्द १४१४ विक्रम-सम्वत् २०६४-६५
शकाब्द १९२९-१९३०   ईसवी सन्-२००७-२००८

प्रकाशनतिथि- गौरपूर्णिमा

श्रीराधाकुण्ड से प्रकाशित व्रतोत्सव पत्र जिसमें 'गौड़ेश्वर' शब्द का प्रयोग विगत ६८ वर्षों से हो रहा है। कहीं भी 'माध्व' नहीं है।

विषय सूची

श्रीश्रीहरिभक्तिविलास

प्रथम-विलास

मंगलाचरण

चैतन्यदेवं भगवन्तमाश्रये
श्रीवैष्णवानां प्रमुदेऽञ्जसा लिखन्।
आवश्यकं कर्म विचार्य साधुभिः
सार्द्धं समाहृत्य समस्त शास्त्रतः।
भक्तेर्विलासांश्चिनुते प्रबोधानन्दस्य
शिष्यो भगवत् प्रियस्य।
गोपालभट्टो रघुनाथदासं
सन्तोषयन् रूप–सनातनौ च।
मथुरानाथ – पादाब्ज – प्रेमभक्ति – विलासतः।
जातं भक्तिविलासाख्यं तद्भक्ताः शीलयन्त्विमम्।

सदाचार युक्त वैष्णवों की आनन्द वृद्धि के लिए समस्त शास्त्रों से उनके अवश्य पालन करने योग्य कर्तव्यों का विचार पूर्वक संग्रह करके निर्विघ्न लिखने के लिए भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव के चरणों का मैं आश्रय लेता हूँ।।१।। श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी–वृन्द की प्रसन्नता के लिए, उनकी कृपा–प्राप्ति के लिए श्रीकृष्ण–चैतन्यदेव के प्रिय पार्षद श्रीप्रबोधा–नन्द का शिष्य मैं गोपालभट्ट भक्ति–विलास अर्थात् भक्ति के विविध–वैभव को संग्रह करता हूँ।।२।। मथुरा मण्डल–नाथ भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्रेमभक्ति के विलास, वैभव से यह 'श्रीहरिभक्ति–विलास' नामक ग्रन्थ आविर्भूत हुआ है। इसलिए श्रीकृष्ण–भक्तवृन्द इसका अनुशीलन करें।।३।।

गुरु-शरणागति-

भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से जब उनके भक्तजनों का संग प्राप्त होता है और उनके मुख से भक्ति की महिमा सुनी जाती है, तो उस भक्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा जाग उठती है। उसकी पूर्ति के लिए मनुष्य को सद्गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए; क्योंकि श्रीगुरुचरण का आश्रय लेने वाला व्यक्ति ही श्रीभगवान् तथा उनकी भक्ति के तत्त्व को जान सकता है।।४।। इस लोक में अनेक दुःखों का मनुष्य नित्य अनुभव करता है और शास्त्रों में सुना जाता है कि परलोक–स्वर्गादि लोकों में भी असह्य यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को इन समस्त दुःखों से छुटकारा पाने की इच्छा करनी ही चाहिए।।५।। श्रीदत्तात्रेय जी ने कहा है (श्रीभा० ११।६।२६)–बुद्धिमान व्यक्ति को अनेक जन्मों के बाद अति दुर्लभ मनुष्यतन की प्राप्ति होती है। मनुष्य–तन ही एक मात्र परमार्थ या भगवत्–प्राप्ति का कराने वाला है। किन्तु यह मनुष्यतन भी नाशवान है। इसलिए जब तक इस तन की मृत्यु नहीं होती तब तक यत्नपूर्वक संसार के बन्धन से मुक्त होने का शीघ्र उपाय करना चाहिए। अनेक प्रकार के विषय भोग तो पशु आदि

समस्त योनियों में भी प्राप्त होते हैं।।६।
स्वयं भगवान् ने भी कहा है, (श्रीभा० ११।२०।१७) समस्त मंगलों का मूल मनुष्य तन अति दुर्लभ है, मेरी कृपा से सहज में नौका के रूप में यह प्राप्त होता है, गुरुरूप कर्णधार (केवट) विद्यमान् है, फिर मेरा स्मरणरूप अनुकूल वायु इस नौका को प्राप्त है, फिर भी जो मनुष्य इन सब साधनों को पाकर संसार समुद्र से पार नहीं होता, वह आत्मघाती है, अपनी हिंसा करने वाला है।।७।।

गुरु-शरण ग्रहण-विधि

किन लक्षणों से युक्त गुरु को वरण करना चाहिए ? इस विषय में श्रीप्रबुद्ध–योगेश्वर ने कहा है (श्रीभा० ११।३।२१) जो व्यक्ति अपने परम कल्याण की कामना करता है, उसे शब्द–ब्रह्म अर्थात् वेद–शास्त्र के ज्ञाता तथा परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण का अपरोक्ष अनुभव करने वाले भक्ति– परायण सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (यदि गुरु शास्त्र के यथार्थ तत्त्व को नहीं जानता है, तो वह शिष्य के संशयों को मिटा नहीं सकेगा और यदि भक्तिपरायण या भगवदनुभूति रहित होगा तो उसका मन अशान्त होगा, विषयों में आसक्त होगा। अतः वह शिष्य का परम कल्याण करने को अर्थात् भगवत् प्राप्ति कराने में असमर्थ होगा)।।८।। श्रीभगवान् ने कहा है (श्रीभा० ११।१०।५) – जो व्यक्ति मेरे स्वरूप को जानता है एवं शान्त चित्त है, उसे गुरु रूप में स्वीकारना चाहिए।।९।। श्रुतियों (मुण्डक १।२।१२ एवं छान्दोग्य ६।१४।२) में भी कहा गया है कि परतत्त्व श्रीकृष्ण के स्वरूप को जानने के लिए हवनादि की लकड़ी–सामग्री लेकर वेद–शास्त्र के ज्ञाता तथा भगवदनुभवी गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए। जिन्होंने ऐसे सद्गुरु का वरण किया है, वे ही परतत्त्व श्रीकृष्ण को जान सकते हैं, उनको प्राप्त कर सकते हैं।।१०।।

दीक्षागुरु के विशेष लक्षण-

श्रुति कहती है जिनका उत्तम कुल में–अर्थात् दोष रहित वंश में जन्म हुआ है, जो स्वधर्म के उचित आचरण युक्त हैं, आश्रमी अर्थात् गृहस्थ हैं, क्रोधादि से रहित हैं, वेद–शास्त्रज्ञ हैं, श्रद्धावान् एवं ईर्ष्या रहित हैं; जो मधुरभाषी हैं, सुन्दर–सौम्य, पवित्र तथा तरुण–स्वस्थ हैं, जो सब प्राणियों का हित चिन्तन करने वाले हैं, बुद्धिमान् हैं, स्थिर–बुद्धि, सर्वथा विषय–लालसा राग–हिंसा से रहित हैं तथा विचारवान् हैं, सगुण–सविशेष श्रीभगवत्–विग्रह की उपासना करने वाले हैं, कृतज्ञ हैं, शिष्य में स्नेह रखते हैं, उसका मंगल चाहते हैं ऐसे दीक्षा–गुरु होने चाहिये।।११।। अगस्त्य– संहिता में कहा गया है, जो देवता के उपासक हैं, नास्तिक नहीं; शान्त हैं, विषय–

तृष्णा लोभ से रहित हैं, आत्म–अनात्म का ज्ञान रखते हैं, वेदपाठी या अध्यापक हैं, वेद–शास्त्रों के तात्पर्य अर्थों को जानते हैं।।१२।। जो मन्त्र–उद्धार और संस्कार करने में निपुण हैं, श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, तत्त्वज्ञ तथा यन्त्र–मन्त्र का मर्म जानने वाले हैं और शास्त्र–सिद्धान्त को जानते हैं,।।१३।। जो पुरश्चरण का अनुष्ठान करते हैं, होम–मन्त्रसिद्ध हैं, मन्त्रों के प्रयोग की विधि जानते हैं, तपस्वी हैं, सहनशील हैं, सत्यवादी हैं–ऐसे गृहस्थ महापुरुष ही गुरुरूप में वरण करने योग्य हैं, वही गुरु कहलाने योग्य हैं।।१४।। श्रीनारद–पञ्चरात्र में कहा है, सर्वकालवेत्ता ब्राह्मण ही समस्त वर्णों के प्रति मन्त्रदान रूप अनुग्रह करने का अधिकारी है। इस प्रकार लक्षणोंवाला यदि ब्राह्मण न मिले तो शान्त–आत्मा, भगवत्भक्त एवं विशुद्धचित्त क्षत्रिय एवं वैश्य भी गुरुरूप में वरण किया जा सकता है।।१५।।

गुणवान श्रेष्ठ ब्राह्मण गुरु के स्वदेश में रहते हुए, अथवा अन्यदेश में विद्यमान रहने पर कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को किसी हीन वर्ण के व्यक्ति से दीक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् ब्राह्मण के रहने पर जो इसके विपरीत आचरण करता है, उसके यह लोक तथा परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। अतः शास्त्र–विधि का पालन करना चाहिए। क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र प्रति–लोमानुसार अर्थात् निकृष्ट वर्ण होने के कारण किसी उत्तम वर्ण को इन्हें दीक्षा नहीं देनी चाहिए।।१६–१७।।

परम भागवत और भगवत्–स्वरूप को जानने वाला ब्राह्मण ही लोक मात्र का गुरु है। वह समस्त लोक में श्रीहरि की भाँति पूजनीय है।।१८।। महाकुल में जन्म लेने वाला, सब यज्ञों का दीक्षा–प्राप्त तथा सहस्रशाखा का अध्ययन करनेवाला व्यक्ति यदि अवैष्णव है तो ब्राह्मण होने पर भी दीक्षा–गुरु नहीं किया जा सकता है।।१९।। जिसने विष्णु–मन्त्र की दीक्षा ली हुई है और श्रीविष्णु की पूजा करता है, वही 'वैष्णव' कहलाता है। उसे छोड़ कर अन्य व्यक्ति अवैष्णव कहे जाते हैं; अर्थात् शैव, सौर्य, शाक्त, गाणपत्य आदि भी अवैष्णव गिने जाते हैं।।२०।।

दीक्षा-योग्य शिष्य के लक्षण

जो विशुद्ध वंश में उत्पन्न हुआ हो, श्रीमान्, प्रियदर्शन, सत्यभाषी, पवित्र चरित्र, महाबुद्धिमान् तथा दम्भ–कपट रहित है, जो कोम–क्रोधादि रहित, गुरुचरण में श्रद्धा–भक्ति रखने वाला है, जो तन, मन वाणी द्वारा सदा देवता–इष्टदेव की भक्ति करने वाला है, स्वस्थ–शरीर एवं समस्त पापों से रहित है, श्रद्धालु है, ब्राह्मण, देवता, पितृवर्ग की पूजा करने वाला है, युवा, इन्द्रियजित् है

तथा करुण–हृदय वाला है, ऐसा व्यक्ति ही दीक्षित–शिष्य होने का अधिकारी है।।२१–२४।।

गुरु-शिष्य परीक्षा

गुरु को दीक्षा देने से पहले और शिष्य को दीक्षा लेने से पहले, दोनों को एक वर्ष तक एक साथ रह कर एक दूसरे की परीक्षा करनी चाहिए। एक दूसरे के व्यवहार, स्वभाव की तभी जानकारी हो सकती है। इससे कम समय में दोनों की परीक्षा नहीं हो सकती। विशेष कर सद्‌गुरु एक वर्ष तक अपने आश्रित होने वाले शिष्य की परीक्षा करे। जैसे प्रजा के दोष–पाप राजा को और पत्नी के दोष–पाप जैसे उसके पति को लगते हैं, उसी प्रकार शिष्य के किये हुए दोष–पाप गुरु को लगते हैं– उनका फल उसे भोगना पड़ता है।।२५–२७।।

श्रीगुरु-नामोच्चारण तथा गुरु-प्रार्थना

बुद्धिमान शिष्य को जहाँ–तहाँ अश्रद्धा पूर्वक अपने गुरुदेव का नाम उच्चारण नहीं करना चाहिए। सिर झुकाकर हाथ जोड़े हुए उनके नाम से पहले "प्रणव" तथा पीछे 'विष्णुपाद' शब्दों को जोड़ कर उच्चारण करना चाहिए। श्रीगुरुदेव की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए– "हे जगन्नाथ! हे गुरुदेव! संसार– अग्नि से सन्तप्त और काल से डसे हुए मेरी आप रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण हूँ।।२८।।

रागानुगीय–टीका–श्रीगुरुदेव का नाम "ओम् श्री...........विष्णुपाद" कहकर आवश्यकता होने पर उच्चारण किया जाता है। इसी प्रकार श्रीगुरुदेव को कभी कोई अनुमति या राय नहीं देनी चाहिए। उनकी ही आज्ञा का पालन करना उचित है। श्रीगुरुदेव को देखकर उनके आगे नहीं चलना चाहिए, उनके पीछे–पीछे चलना चाहिये। उनके सामने आसन पर, शय्या पर नहीं बैठना चाहिए। इस प्रकार शिष्य को श्रीगुरुदेव का हर तरह से सम्मान– आदर करना चाहिए।

श्रीभगवत्-माहात्म्य

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्येदेवमुपासते।
त्यक्त्वामृतं स मूढ़ात्मा भुंक्ते हालाहलं विषम्।।

स्कन्दपुराण में श्रीब्रह्माजी ने देवर्षि नारदजी से कहा, हे नारद! भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर जो और किसी देवता की आराधना करता है, वह मूर्ख है और अमृत को छोड़कर जहर का पान करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं हैं।।२६।। वैष्णव–तन्त्र का कथन है कि जो व्यक्ति श्रीब्रह्मा एवं श्रीशिव को श्रीनारायण के समान समझता है, उसे सदा पाषण्डी जानना चाहिए। (साधारण मनुष्य को नारायण मानने वालों को क्या संज्ञा दी जाय, विचारणीय है)।।३०।।

विष्णु-मन्त्र-माहात्म्य

जो व्यक्ति श्रीगुरुदेव की कृपा से श्रीवैष्णवमन्त्रराज की दीक्षा लेकर उसका जप करता है, वह समस्त वैभव को प्राप्त कर श्रीविष्णु के परमपद को प्राप्त करता है।।३१।। जिन मनुष्यों ने हजार वर्षों तक भारी पवित्र तपस्या की है, वे ही विष्णुमन्त्र से दीक्षित होकर श्रीविष्णु–मन्त्र का जप करते हैं एवं वे सब लोगों को पवित्र करने वाले हैं।।३२।।

श्रीकृष्ण के मन्त्रों का जाप करते समय वे जिन–जिन लोगों को देखते हैं अथवा जिनको वे अपने चरणों से स्पर्श करते हैं, वे तत्काल महा–भय अर्थात् संसार–बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।।३३।।

श्रीनारद जी ने श्रीध्रुवजी को द्वादशाक्षरमन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) देते हुए कहा, हे राजकुमार ! यह मन्त्र परम गुप्त है। सात रात्रियों में जपने से जापक आकाश में विचरने वाले देवतादिकों को देख सकता है।।३४।। चन्द्र–सूर्य–ग्रहादि बार–बार गमन करते हुए संसार में लौटते हैं, किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र का जप–चिन्ता करने वाला व्यक्ति संसार में पुनः जन्म–मरण को प्राप्त नहीं करता।।३५

नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि साम, यजुः, ऋक् तीनों वेद, षडंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष तथा काव्यादि और सम्पूर्ण देवतादिक के जो कुछ भी वाङ्मय (शास्त्र) हैं; वे सभी अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) में विराजते हैं। यह सम्पूर्ण वेदान्त का सारस्वरूप है तथा संसार सागर से तरने के लिए नौका स्वरूप है। संसार–बन्धन से मुक्ति चाहने वाले व्यक्तियों की एक मात्र गति है।।३६

श्रीराम-मन्त्र माहात्म्य

अगस्त्य संहिता में कहा गया है कि–गाणपत्य, शैव, शाक्त, सौर इत्यादि सब मंत्रों में श्रीराममन्त्र ही श्रेष्ठ, और अभीष्ट–फलदायक है।।३७।। वैष्णवमन्त्रों में षड़क्षर श्रीराममन्त्र (ॐ नमो रामाय) ही अधिकतर फलप्रद है। वह गाण–पत्यादि मन्त्रों से करोड़ करोड़–गुणा श्रेष्ठ है।।३८।। विप्रसत्तम ! दीक्षा के बिना, पुरश्चरण एवं न्यासादि के बिना भी केवल मात्र जप द्वारा श्रीराममन्त्र सिद्धिदायक होता है। आठ प्रकार के श्रीराममन्त्रों में षड़क्षर मन्त्र ही अनायास फलदायक है। यह षड़क्षर श्रीराममन्त्र महापापों का निवारक है।।३६।। इसी प्रकार श्रीनृसिंह–मन्त्र के विषय में भी कहा गया है कि उसे जपने वाले व्यक्ति सदानन्द–परम धाम को प्राप्त करते हैं।।४०।।

श्रीगोपाल-मन्त्र माहात्म्य

सब अवतारों के बीजस्वरूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णदेव के मन्त्र सब मन्त्रों से अधिक वीर्यशाली हैं।।४१।। श्रीकृष्ण ही सच्चिदा–नन्दमूर्त्ति परब्रह्म हैं, उनके स्मरणमात्र से ही वे सब भुक्ति–मुक्तिफलप्रद होते हैं अर्थात् श्रीकृष्णमन्त्र ही सब मन्त्रों को भुक्ति–मुक्ति फल प्रदान करने की शक्ति देते हैं।।४२।।

परब्रह्म श्रीकृष्ण ने गोपलीला के द्वारा अपनी भगवत्ता विस्तार की है; उसी गोपालरूप के मन्त्र समूह ही सम्यक् प्रकार से प्रधान हैं; अर्थात् सब कृष्णमन्त्रों में श्रीगोपालदेव का मन्त्र ही प्रधानतम है। परन्तु उन सब में अष्टादशाक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है।।४३।।

रागानुगीय–टीका–अष्टादशाक्षर मन्त्र (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) समस्त वैष्णव–मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। श्रीब्रह्मा जी ने इसका परिचय श्रीसनकादिक को दिया था। गोपालतापनी श्रुति में इसकी विस्तृत व्याख्या का उल्लेख है। श्रीब्रह्मा को सृष्टि उत्पन्न करने से पहले स्वयं भगवान् श्रीगोविन्द ने इस मन्त्र को प्रदान किया था तथा वृन्दावनधाम–लीला–परिकरों के साथ अपने निखिल ऐश्वर्य–माधुर्य का दर्शन कराया था। प्रेम–भक्तिपूर्वक जिनका श्रीकृष्ण चरण–सेवा ही परम पुरुषार्थ या साध्य है, वे इस मन्त्र के ध्यान–चिन्तन द्वारा उनका भजन करते हैं। गौतमीय तन्त्र में तथा श्रुतियों में इस मन्त्र को पाँच पदों में विभक्त करके उनके विस्तृत अर्थ प्रकाशित किये गये हैं। रागानुगा– भक्ति साधकों का यह मन्त्र सर्वस्व है। श्रीगोविन्द के षड़क्षर, अष्टाक्षर, दशाक्षर, द्वादशाक्षर आदि मन्त्रों के द्वारा ऐश्वर्य–कामी श्रीशिवादि देवता एवं सुर–मुनि श्री कृष्ण की उपासना करते हैं। मन्त्रों का विषय अति गोपनीय है, यहाँ इतना ही उल्लेख पर्याप्त है।

मन्त्रदीक्षा के अधिकारी

तान्त्रिक–मन्त्रों की दीक्षा में साध्वी स्त्री और सद्बुद्धि अर्थात् द्विज–सेवापरायण शूद्रादि का भी अधिकार है।।४४।। शूद्रजन एवं नारी–जाति, अपने पति की हृदय में चिन्ता करके श्रद्धासहित, आगम में कहे विधान से विष्णु की पूजा कर सकते हैं।।४५।। नाम–मात्र उच्चारण द्वारा शूद्र का देवार्चन होता है। और सब लोग वेदान्तानु– सारी आगम– मार्ग द्वारा पूजा करें।।४६।। इस प्रकार सनातनी श्रुति है कि– पति का प्रिय करने वाली और हित–साधन करने वाली स्त्रियों को विष्णु की आराधनादि में अधिकार है।।४७।। पवित्र व्रतधारी, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, सेवा–परायण शूद्रजन, पतिव्रता स्त्रियां तथा अन्यान्य

प्रतिलोमज, अनुलोमज, चाण्डाल आदि जातियां श्रीराममन्त्र के अधिकारी हैं।।४८।।

सर्ववर्ण, सर्व आश्रम, नारी– जाति और जिन सब मनुष्यों के नाम और जन्म नक्षत्र के पहले वर्ण सहित मन्त्र के आदि अक्षर का मिलन नहीं है; उनके सम्बन्ध में यह श्रीगोपाल– मन्त्र ही शीघ्र वांछित–फल दाता है।।४६।।

श्रीमहादेवजी ने पार्वती से त्रैलोक्यसम्मोहनतन्त्र में अष्टादशाक्षर मन्त्र के सम्बन्ध में कहा है कि–हे प्रियतमे ! इस अष्टादशाक्षर गोपाल– मन्त्र में सिद्धादि–शोधन कथित शात्रव–दोष अर्थात् शत्रु– सम्बन्धी दोष नहीं है, इस में ऋण धनादि का और नक्षत्र राशि के विचार का भी प्रयोजन नहीं है, मन्त्र–समूह में कोई–कोई मन्त्र छिन्न, कोई–कोई मन्त्र रुद्ध, कोई मन्त्र मदोन्मत्त, कोई–कोई मन्त्र मलिन, कोई–कोई मन्त्र स्तम्भित, कोई–कोई मन्त्र कीलित और कोई–कोई मन्त्र दूषित होता है, किन्तु यह अष्टादशा– क्षरात्मक गोपालमन्त्र इन सब दोषों में लिप्त नहीं है, सुतरां यही त्रिलोकी में अति उत्तम है। यह अन्यान्य मन्त्रों के दोषों को हरने वाला है।।५०।।

साधारणतः बृहद्गौतमीयतन्त्र में दृष्टादृष्ट फलप्रद कृष्णमन्त्र के सम्बन्ध में कहा गया है, तापसगण इसे जानकर सहज में ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, श्रीकृष्ण– मन्त्र में क्या गृही, क्या वानप्रस्थ, क्या यति, क्या ब्रह्मचारी, क्या स्त्री जाति, क्या शूद्रादि–सभी अधिकारी हो सकते हैं।।५१।।

द्वितीय-विलास

तं श्रीमत्कृष्णचैतन्यदेवं, वन्दे जगद्गुरुम्।
यस्यानुकम्पया श्वापि, महाब्धिं सन्तरेत् सुखम्।।

जिनकी कृपा से श्वान (कुत्ता) भी सुखपूर्वक भवसागर से पार हो जाता है, उन जगद्गुरु श्रीकृष्ण– चैतन्य देव की मैं वन्दना करता हूँ।।५२।।

दीक्षा-प्रकरण

जगत् में जिस प्रकार उपनयन (जनेऊ, के बिना ब्राह्मण को अपने कर्म, यज्ञ, अध्ययन आदि कर्मों का अधिकार नहीं रहता, उपनयन के बाद अधिकार होता है; इसी प्रकार अदीक्षित मनुष्यों का भी भगवत्– मन्त्र अर्चनादि में अधिकार नहीं है। इसलिये अपने को शिवसंस्तुत (दीक्षित) करना चाहिये।।५३–५४।। जो व्यक्ति विष्णु–दीक्षा को प्राप्त नहीं होते, अथवा जो जनार्दन की पूजा नहीं करते, जगत् में उन्हीं को 'पशु' कहा जाता है। उनके जीवन धारण का क्या फल है ?।।५५।।

जो दिव्य ज्ञान प्रदान करती है और पापसमूह को नाश करती है, तत्त्व–कोविद गुरुजनों ने उसका नाम "दीक्षा" निर्देश किया है।।५६।।

जिस प्रकार रस (पारे) के विधान द्वारा कांसा भी सोना बन जाता है, अर्थात् यथा विधि पारे के संयोग से काँसा भी सुवर्णता प्राप्त करता है। इसी प्रकार दीक्षा–विधि से मनुष्यों में भी द्विजत्व उत्पन्न हो आता है। दीक्षित व्यक्ति का शरीर भजन के उपयोगी अप्राकृत शरीर को प्राप्त करता है।५७।।

दीक्षा-काल

चैत्र मास में मन्त्र–ग्रहण करना बहुत दुःखदायक कहा गया है। वैशाख में मन्त्र–ग्रहण करने से धन–लाभ, और ज्येष्ठ में मन्त्र ग्रहण करने से निःसन्देह शीघ्र मृत्यु होती है। आषाढ़ मास में मन्त्र स्वीकार करने से बन्धु का नाश, श्रावण में भय की प्राप्ति, भाद्रपद में सन्तान का क्षय, किन्तु आश्विन में दीक्षा लेना सब विषयों में शुभ है। कार्तिक में धनवृद्धि और अगहन में मन्त्रग्रहण शुभदायक होता है। पौषमास में मन्त्रग्रहण करने से ज्ञान का लोप, माघ में बुद्धि की वृद्धि, और फाल्गुन मास में मन्त्र–ग्रहण करने से सब को वश में करने की शक्ति प्राप्त होती है। शास्त्रों ने इस प्रकार कहा है।।५८–६०।।

कुछ पुराणों का कथन है कि– श्रावण के महीने में मन्त्र–स्वीकार करने से निःसन्देह समृद्धि और कार्तिक में मन्त्रग्रहण करने से ज्ञान प्राप्त होता है। और फाल्गुन के महीने में भी मन्त्रग्रहण करने से समृद्धि होती है; किन्तु अधिक मास त्याग देना चाहिये; अर्थात् मलमास में मन्त्रग्रहण करना अनुचित है। कार्तिक के महीने में दीक्षा ग्रहण करने से भक्ति की प्राप्ति होने से मनुष्यों का जन्म–बन्धन कट जाता है। इसलिये सर्वथा यत्नसहित कार्तिकमास में दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। द्वितीया, पंचमी, षष्ठी, विशेषतः द्वादशी और त्रयोदशी में भी दीक्षा लेना श्रेष्ठ है। स्थानान्तर में लिखा है, पूर्णिमा, द्वितीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी, ये सब तिथियाँ दीक्षा कार्य में प्रशस्त और सर्व–लाभप्रद हैं।

विशेषः सद्गुरु की दुर्लभता या एक बार मात्र उनकी प्राप्ति होने से जिस समय में उनकी आज्ञा प्राप्त हो, उसी समय दीक्षा का प्रशस्त–काल जानना चाहिये। फिर क्या ग्राम में, क्या वन में, क्या क्षेत्र में, क्या दिन में, क्या रात्रि में, जिस समय योग्य गुरुदेव दैवयोग से समागत हों अर्थात् उनकी आज्ञा से उसी समय दीक्षा ली जा सकती है। जिस समय गुरु की इच्छा हो, उनकी आज्ञानुसार उसी समय में

दीक्षा हो सकती है। सद्गुरु के अपनी इच्छा से आने पर तीर्थ, व्रत, होम, स्नान, जपक्रिया प्रभृति कोई दीक्षा के प्रति आवश्यक नहीं है।।६४–६५।।

सावधान ! आजकल ऐसे भी सन्त मन्यमानि पुरुषों की कमी नहीं; जो साधकों को वैष्णवी दीक्षा लेने से मना करते हैं। यह कहकर अपनी उदारता का परिचय देते हैं कि सम्प्रदायों के झंझटों से दूर रहना चाहिये। वास्तव में उनकी भी सम्प्रदाय है जिसे "अशास्त्रीय–सम्प्रदाय" कहा जाता है। जैसे राजनीति में कुछ निर्दलीय–स्वतन्त्र नेता, विधायक तो होते हैं, किन्तु उनका संसद में कुछ भी ठोस–व्यक्तित्व या अधिकार नहीं रहता; दर्शनीय मूर्ति होते हैं, उसी प्रकार परमार्थ राज्य में भी ऐसे "अशास्त्रीय सम्प्रदायी पुरुषों का कुछ अधिकार नहीं रहता; जीव का श्रेय विधान नहीं कर सकते। बल्कि वे साधक को भगवत्–साम्मुख्य से रोक कर अपनी स्वार्थ रस्सी में बांधे रखना चाहते हैं। स्वयं एक महदपराध कमाकर शास्त्रों की अवहेलना करते हैं और साधकों को भी गुमराह करते हैं।

रागानुगीय–टीका–दीक्षा लेने के लिये अनेक अनुष्ठानों का वर्णन मूलग्रन्थ में है, यथा दीक्षा–मण्डल एवं कुण्ड निर्माण, दीक्षांग–पूजा, घटस्थापन, शंख–स्थापन आदि घर में भगवत्–पूजा, इत्यादि। दीक्षा के पहले गुरु तथा शिष्य के लिये कुछ नियम पालन, शुभ–दिन की क्रिया तथा अभिषेक आदि। ये सब अनुष्ठान श्रीगुरु तथा शिष्य की परिस्थिति पर निर्भर करते हैं।

मन्त्रदान–महिमा

सात्त्विक (निष्कपट और श्रद्धाशील) इस लोक में सत्पुरुष दीक्षा–मंत्र एवं विद्यादान के द्वारा कीर्ति, (प्रतिष्ठा) वदान्यत्व, (दानशीलता), सन्तति–वृद्धि, धन और सुख को प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। परमेश्वर विष्णु जिस प्रकार सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सब प्रकार के दानों में विद्यादान ही श्रेष्ठ कहा गया है। देहधारियों को विद्यादान करने से, दीक्षा तो एक प्रकार से पराविद्या– भक्ति का दान है। ऐसे दीक्षा–दाता सद्गुरु का सौ जन्म का पाप भी नष्ट हो जाता है। जिस दान के द्वारा मंगलस्वरूप (अथवा परम सुखात्मक) परमकारण (ब्रह्म) श्रीकृष्ण को प्राप्त किया जाय, उस विद्या दान से श्रेष्ठदान न कोई है। और न कोई हो सकता है।।६६–६८।।

रागानुगीय–टीका–श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपाद ने इस दूसरे विलास के आरम्भ में श्रीमन्महाप्रभु की कृपा–महिमा को प्रकाशित करते हुए कहा है कि उनकी कृपा से एक

कुत्ता भी भवसागर से सुखपूर्वक पार हो जाता है। श्रीगोस्वामिपाद ने उस कुत्ते के उद्धार की लीला का यहां संकेत किया है, जिसे श्रीमन्महाप्रभु ने "कृष्ण–कृष्ण" नाम उच्चारण कराकर सबके सामने पार्षद–देह की प्राप्ति करा दी थी।

श्रीमन्महाप्रभु जब संन्यास–ग्रहण कर जगन्नाथपुरीमें विराजमान् थे तब नवद्वीप, एवं आस–पास के ग्रामों के अनेक भक्त उनके दर्शनों के लिये प्रतिवर्ष रथयात्रा के अवसर जगन्नाथपुरी जाते थे। उन सबको ले जाने की सब व्यवस्था श्री शिवानन्द सेन किया करते थे। पैदल यात्रा होती थी, रास्ते में कहीं नदी, तो कहीं यात्री–कर चुकाने की समस्या होती थी; श्रीसेन उन सबका समाधान करते और जहाँ पड़ाव होता वहां सबके रहने–भोजनादि की व्यवस्था वे किया करते थे।

एक वर्ष की बात है जब अनेक भक्तों को लेकर श्रीशिवानन्द नवद्वीप से नीलाचल जा रहे थे। बहुत दूर चले जाने पर उन्होंने देखा कि एक कुत्ता भी यात्रियों के साथ पीछे–पीछे चल रहा है। उन्होंने सोचा यह कहाँ जायगा, जंगल में भूखा–प्यासा मर जायगा अथवा कोई हिंसक पशु इसे मार देगा। उनमें उसके प्रति दया जाग उठी। वह उसको भी खाना आदि देकर सावधानता से अपने साथ ले चले।

रास्ते में एक नदी से नाव पर चढ़कर सब यात्री पार हो गये। नाविक ने कुत्ते को नाव पर चढ़ाने से इन्कार कर दिया। श्रीशिवानन्द ने नाविक को चौगुना भाड़ा देकर उसे भी नाव पर चढ़ा कर पार भेज दिया। वह स्वयं यात्रियों के कर चुकाने में रुक गये। यात्री सब पड़ाव पर पहुँचे एवं सेवकों ने उनके वास, खान–पान की सब व्यवस्था कर दी।

श्रीशिवानन्द बड़ी देर बाद पड़ाव पर पहुंचे। सबके खान–पान के बारे में पूछा, फिर कुत्ते के विषय में भी पूछा। वह कहीं दीखा भी नहीं उसे खाना देना भी सेवक भूल गया। यह जानकर श्रीसेन को बहुत दुःख हुआ। उसने चारों ओर आदमी भेजे उसे ढूंढने के लिये। परन्तु कुत्ते का कुछ पता न लगा। दुःखी होकर श्रीसेन ने भी स्वयं कुछ खाया–पिया नहीं, भूखे सो गये।

प्रातःकाल फिर सब तरफ कुत्ते को ढूंढा गया, परन्तु वह कहीं न मिला। उसका विचार छोड़कर सब यात्री प्रभु–दर्शन की उत्कण्ठा में पुरी चले आये। पूर्व वर्षों की तरह सब श्रीमहाप्रभु से मिले। श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन कर अपने वासस्थान पर चले गये। दूसरे दिन जब सब भक्त श्रीमहाप्रभु के दर्शन करने गये तो देखा कि वही कुत्ता श्रीमहाप्रभु

के पास कुछ दूर बैठा है। श्रीमहाप्रभु उसे नारियल की गिरि का प्रसाद डाल रहे हैं और मन्द मुसकराते हुए उसे कह रहे हैं "कृष्ण–कृष्ण बोलो"। वह कुत्ता गिरि खाता जा रहा है और बार बार "कृष्ण–कृष्ण" उच्चारण करता जा रहा है। यह देख कर सब भक्तगण अतिशय चकित हो उठे।

श्रीशिवानन्द ने जब उसे वहाँ इस अवस्था में देखा तो उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। उन्होंने उसे दण्डवत् प्रणाम किया, अपने अपराध की दीनतापूर्वक क्षमा याचना की। थोड़ी देर में वह कुत्ता सबके देखते देखते पार्षद–शरीर धारण कर वैकुण्ठ को चला गया। श्रीमहाप्रभु की इस अचिन्त्य–लीला को देखकर सब चित्र से लिखे रह गये।

इस लीला का स्मरण कर श्रीगोस्वामिपाद ने कहा है "श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को प्राप्त कर एक कुत्ता भी सुखपूर्वक महा भवसागर से पार चला जाता है, भगवद्धाम को प्राप्त कर लेता है।

ध्यान देने की बात है कि श्रीशिवानन्द जी में जीव मात्र के प्रति कितना दया भाव था ? वैष्णवों के लिये यह प्रसंग "जीवे–दया" का आदर्श है। द्वितीयतः, जब कोई जीव प्रारब्ध कर्म–फलानुसार कुत्ता पशु आदि योनि को प्राप्त कर– "कृष्ण नाम" उच्चारण करने के सौभाग्य से वंचित हो जाता है, यदि उसे वैष्णव–संग और महत्– कृपा प्राप्त हो जाये तो वह कुत्तादि–पशु भी कृष्णनाम केवल उच्चारण का सौभाग्य ही नहीं प्राप्त करता, बल्कि उसके परम फल श्रीभगवान् के चरणदर्शन प्राप्त कर उनके धाम को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रश्न के उठने की तो कोई गुंजाइश नहीं कि कुत्ता या कोई पशु मनुष्य की तरह कैसे 'कृष्ण–कृष्ण' नाम उच्चारण करने लगता है ? वास्तव में श्रीकृष्णनाम स्वयं प्रकाश तत्त्व है। बोलने की शक्ति रखते हुए भी मनुष्य अपनी प्राकृत जिह्वा से श्रीकृष्णनाम उच्चारण नहीं कर सकता। इच्छा करने पर ही श्रीकृष्णनाम स्वयं कृपा कर उसकी जिह्वा पर स्फुरित होता है। पशु–कुत्तादि में नाम उच्चारण करने की इच्छा उदित होना भी एकमात्र कारण है महत्–कृपा।

इस प्रसंग में तो स्वयं श्री मन्महाप्रभु उस कुत्ते को कृष्ण नाम उच्चारण करने की आज्ञा कर रहे हैं। इसलिये उसकी प्राकृत जिह्वा अप्राकृतत्व प्राप्त कर श्रीकृष्ण नाम उच्चारण कर ही सकती है, उनकी इच्छा तथा अचिन्त्य शक्ति उसके प्रारब्ध कर्मफल को नष्ट कर उसे ऐसा सौभाग्य प्रदान करने में पूर्ण समर्थ है। अतः कुत्ते के द्वारा

"श्रीकृष्णनाम" का उच्चारण होकर उसका पार्षद–देह प्राप्त कर महा भवसागर से उतीर्ण हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। जबकि साधारण पुरुषों के सिखाये तोता मैना मनुष्यों की बोली बोलते देखे ही जाते हैं।

तृतीय विलास

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं, श्रीचैतन्यमहाप्रभुम्।
नीचोऽपि यत् प्रसादात्, स्यात् सदाचारप्रवर्त्तकः।।

जिनकी कृपा से नीच–अनभिज्ञ व्यक्ति भी लिखन–पठनादि द्वारा सदाचार का प्रवर्त्तक हो जाता है, मैं उन्हीं अनन्त अद्भुत ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की वन्दना करता हूँ।

सदाचार-प्रकरण

सदाचार के बिना किसी का भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। अतः सर्वत्र अवश्य निश्चित ही सदाचार अपेक्षित है; अर्थात् सब विषयों में ही सदाचार की आवश्यकता है।।७०।। सदाचारवान् पुरुष ही इस लोक और परलोक–दोनों ही को जीतता है। (सदाचार के लक्षण कहते हैं) दोष–हीन व्यक्ति ही साधु है "सत्" शब्द साधु–वाचक है, साधुगणों का आचरण ही सदाचार कहा गया है।।७१।।

नित्य-कर्म

ब्राह्ममुहूर्त में "कृष्ण कृष्ण"–यह नाम कीर्तन करते–करते गात्रोत्थान करें। हाथ और पांव धोकर दन्त–मंजन करें। फिर आचमन करके रात्रि के पहिरे वस्त्र त्याग दें और दूसरे वस्त्र पहन कर दो बार आचमन करें। फिर परमाशुद्धि अर्थात् अन्तःशुद्धि और बाह्य–शुद्धि की इच्छा कर मस्तक में श्रीगुरु के चरणकमलों का ध्यान और उनका स्तव (उत्कर्ष–कीर्त्तन) करें। फिर श्रीकृष्णनाम–कीर्त्तन और स्मरण पूर्वक निम्न–लिखित दो श्लोक पढ़े।।७२–७४।।

जयति जन–निवासो देवकी–जन्मवादो,
यदुवर–पर्षषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिर–चर–वृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन,
व्रज–पुर–वनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्।।

श्री भा.१०.६०.४८।।

अर्थात्; जो अन्तर्यामी रूप से सर्वजीवों में अवस्थित हैं; देवकी के गर्भ से जिनका जन्म हुआ है, ऐसा जिनका अपवाद है, यदुवंशीयगण ही जिनके सभा–सेवक हैं, इच्छा मात्र से विनाश समर्थ होने पर भी जिन्होंने बाहुबल से अधर्म का नाश किया है, जो (अधिकार–विशेष की अपेक्षा न करके) वृन्दावनस्थ स्थिर, चर, तरु, गौओं का भी संसार–दुःख नाश करते हैं, और जो मन्द मुसकराते श्रीमुख द्वारा व्रज–वनिताओं का और पुरवनिताओं का कामदेव वर्द्धित करते हैं अर्थात् परम प्रेम की वृद्धि करते हैं, वे श्रीकृष्ण जययुक्त हों।।७५।।

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः।
दघ्नश्च निर्मन्थन–शब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममंगलम्।।

अरविन्दनेत्र श्रीकृष्ण के कीर्त्तनादि रूप गान में तत्पर व्रजांगना–कुल की कण्ठ–ध्वनि दधिमन्थन से उठी हुई ध्वनि के सहित मिल–कर नभमण्डल को स्पर्श कर रही है, उस शब्द से सब दिशाओं का अर्थात् दशदिक्–स्थित जीवगणों का लौकिक और पारलौकिक अमंगल विनाश को प्राप्त हो रहा है।।७६।।

सदा श्रीकृष्ण का स्मरण करें, और उन्हें कभी न भूलें। समस्त विधियाँ एवं समस्त निषेध इन दोनों के ही अधीन हैं; अर्थात् समस्त पुण्यकर्म या भजनांग स्मृति के, और समस्त पाप–विस्मृति के अनुगामी होते हैं। विष्णुस्मरण के बिना जो सब मुहूर्त्त, जो समस्त क्षण, जो समस्त काष्ठा और जो सब निमेष बीतते हैं, विष्णु–स्मरणहीन पुरुष उन सब मुहूर्तादि में यम के द्वारा वंचित हो जाता है। वह सब समय उसके जीवन का नष्ट होता है।।७७।।

शुद्धि-करण

पराशर मुनि ने कहा है कि–देह का असामर्थ्य होने पर, एवं काल, देश और अधिकारी की अपेक्षा करके सब प्रकार के स्नान से ही तुल्य शुद्धि होती है। मनु इत्यादि अनेकों मुनियों ने कहा है कि स्नान करने से गृहस्थाश्रमी द्विज–गण मुक्ति को प्राप्त होते हैं अर्थात् विशुद्धि लाभ करते हैं; किन्तु 'मानस–स्नान' ही सब प्रकार के स्नानों में प्रधान है।।७८।।

विष्णुधर्म में पुलस्त्य मुनि के वाक्य हैं, कि अपवित्र हो, अथवा पवित्र हो, या सब अवस्थाओं में अर्थात् जिस किसी अवस्था में हो, पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण को स्मरण करने से मनुष्य बाहर से (शरीरादि द्वारा) और भीतर से (मन–इत्यादि द्वारा) शुद्ध हो जाते हैं।।७६।।

प्रायश्चित-प्रकरण

सब प्रकार के अर्थात् तपस्या, दान, जप और व्रतादि प्रायश्चित्तों में कृष्ण–स्मरण ही सब की अपेक्षा श्रेष्ठ प्रायश्चित है। पापाचरण करने के पीछे जिस व्यक्ति को पश्चाताप उत्पन्न होता है, एक मात्र हरि–स्मरण ही उसके पक्ष में परम प्रायश्चित्त है।।८०–८१।। महापातक –युक्त हो अथवा सर्वपाप–युक्त हो, जिस व्यक्ति का मन विष्णु–परायण है, वह तत्क्षण पातक से विशेष रूप से मुक्त हो जाता है।।८२।। विष्णु–स्मरण से जिसके पापमूल रागादिसमूह नाश होते हैं; वही मुक्ति लाभ करता है। स्वर्ग–प्राप्ति उसके पक्ष में ही निर्विघ्न प्रतीत होती है।।८३।। अपने धर्मपर निष्ठा,

सांख्य (आत्म–अनात्म– विवेक) और अष्टांग योग आदि का फल एवं मनुष्य जन्म का लाभ यही है कि अन्त काल में नारायणंस्मृति बनी रहे।।८४।।

प्रणाम-प्रार्थना-प्रकरण

श्रीकृष्ण–स्मरण का महिमा–महासागर अत्यन्त दुस्तर है; अर्थात् कठिनता से तरने योग्य है। जो पुरुष स्वेच्छा से मन द्वारा भी उसके पार जाने की अभिलाषा करता है, वह अचेतन है, अर्थात् वह अपने अहंकार के कारण भगवान् चैतन्यदेव की माया से वंचित है। सबसे पहले वह किञ्चित तुलसीपत्र सहित चरणामृत पान करे, फिर चरणोदक से अपने मस्तक का अभिषेक करे। तदनन्तर प्रथम श्रीगुरुदेव को प्रणाम करते हुए श्रीकृष्ण के चरणकमलों में किञ्चित् निवेदन करे और अपने सम्पूर्ण कर्म उन्हें समर्पण कर नमस्कार करे।।८५।।

"मैं धर्म को जानता हूँ किन्तु उस में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं अधर्म को भी जानता हूँ, किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं है। हे हृषीकेश! आप हृदय के भीतर अधिष्ठित होकर जिस प्रकार नियोजित करते हो मैं उसके अनुसार ही आचरण करता हूँ। श्रीब्रह्मण्यदेव, गो–ब्राह्मण के हितकारी, जगत् का हित करने वाले गोविन्द श्रीकृष्ण! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये।।८६–८७।।

ध्यान-प्रकरण

फुल्लेन्दीवर–कान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियम्।
श्रीवत्सांकमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।।
गोपीनां नयनोत्पलार्चितितनुं गो–गोप–संघावृतम्।
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्यांगभूषं भजे।।

जिनका मुख–मण्डल विकसित नीलकमल की समान कान्तिमान है, चन्द्रमा के समान है एवं मनोहर भूषण जिनको प्रिय है; जो श्रीवत्स के चिह्न से युक्त हैं, शोभायमान कौस्तुभ और पीताम्बर जो धारण कर रहे हैं, गोपिकाओं के नेत्र–नवोत्पलों द्वारा जिनका श्रीविग्रह पूजित है और जो गो एवं गोप–गणों से घिरे हुए हैं, उन्हीं कलवेणु के बजाने वाले दिव्यांगभूषणधारी श्रीगोविन्द का मैं ध्यान करता हूँ।।८८।।

बारम्बार सम्पूर्ण शास्त्र के मन्थन से और विचार करने से यही निश्चित हुआ है कि सदा श्रीकृष्ण का ध्यान करना ही उचित है।।८६।।

चतुर्थ-विलास

स्नात्वा श्रीकृष्णचैतन्य–नामतीर्थोत्तमे सकृत।
नित्याशुचिः शुचीन्द्रः सन् स्वधर्मं वक्तुमर्हति।।

नित्य अपवित्र व्यक्ति भी श्रीकृष्ण–चैतन्य–नामरूप उत्तमतीर्थ में एकबार स्नान करके पवित्रतम हो जाता है। फिर वह अपने धर्मों के पालन–वर्णन करने में योग्य हो जाता है।।८६।।

देह-शुद्धि स्नानादि प्रकरण

स्नानहीनो नरः पापी स्नानहीनोऽशुचिः सदा।
अस्नायी नरकं भुक्त्वा पुक्कशादिषु जायते।।

शरीर–शुद्धि के लिये नित्य स्नान करना चाहिये, क्योंकि स्नान– रहित मनुष्य पापी कहा जाता है, स्नान–रहित मनुष्य सदा अपवित्र है। जो मनुष्य स्नान–हीन है, वह नरक–यातना भोगने के बाद पुक्कशादि अन्त्यज–कुल में जन्म लेता है।।६०।।

स्नाने मनः प्रसादः स्याद्देवा अभिमुखाः सदा।
सौभाग्यं श्रीः सुखं पुष्टिः पुण्यं विद्या यशोधृतिः।।

प्रातःकाल नित्य स्नान करने से मन में प्रसन्नता उदित होती है, देवतावृन्द सदा अनुकूल रहते हैं। सौभाग्य, धन–सम्पत्ति, सुख, स्वस्थता, पुण्य–लाभ, विद्या, यश तथा धैर्य अर्थात् मन–स्थिरता; ये सब गुण नित्य स्नान करने वाले में उदित हो आते हैं।।६१।।

स्नान करते समय इस मन्त्र के द्वारा तीर्थों का जल में आह्वान करना चाहिये–

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !
नर्मदे सिन्धु कावेरिः जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

हे गंगे ! हे यमुने ! हे गोदावरि ! हे सरस्वति ! हे नर्मदे ! हे सिन्धो ! हे कावेरि ! इस जल में आकर अधिष्ठित होवो।।६२।।

स्नान करने के बाद श्रीभगवान् का चरणामृत पान करना चाहिये, यह श्लोक पाठ करते हुए–

अकाल मृत्युहरणं सर्वव्याधि विनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्।।

जो अकाल मृत्यु हरण करता है, जिसके द्वारा समस्त व्याधियाँ नष्ट होती हैं, मैं श्रीविष्णु का वही चरणामृत पान करता हूँ और मस्तक पर धारण करता हूँ।।६३।। इसके बाद भगवत्–मन्दिर में प्रवेश करना चाहिये। आचमनादि करके विष्णु–मन्दिर का मार्जन करें; एवं कृष्ण–दर्शन और उनके नामों का कीर्त्तन करते–करते दासभाव से आत्मार्पण करें।।६४।। नृपश्रेष्ठ श्रीअम्बरीष ने श्रीकृष्ण के चरणकमलों में चित्त अर्पण किया था, श्रीभगवान् के गुणकीर्तन में वाणी को नियुक्त किया था। विष्णु–मन्दिर के झाड़ने इत्यादि में दोनों हाथों को नियुक्त किया था; और श्रीगोविन्द की सत्कथा सुनने में दोनों कानों को नियुक्त कर रखा था।।६५।।

वस्त्र-तिलकादि धारण प्रकरण

एक वस्त्र धारण करके जैसे भोजन करना अच्छा नहीं है वैसे एक वस्त्र धारण करके भगवान् की पूजा भी नहीं करनी चाहिए। सदा सफेद वस्त्र पहिनें, लाल वस्त्र पहनकर भगवत्सेवा, भजन करना उचित नहीं है।।६६।।

भगवत्–पूजन से पहले द्वादश अंगों पर गोपीचन्दन, राधाकुण्ड–रज अथवा तुलसी–मृत्तिका का तिलक निम्नलिखित स्थानों पर उनके

देवताओं का स्मरण करते हुए धारण करना चाहिए। "श्रीकेशवाय नमः" "श्रीनारायणाय नमः" इत्यादि सब स्वरूपों के नामों के साथ "नमः" शब्द जोड़कर उच्चारण करना चाहिये। अपनी–अपनी सम्प्रदाय के तिलक को धारण करने का विधान है।

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में लिखा है–केशव का ललाट में, उदर में नारायण का, माधव का हृदय में, गोविन्द का कण्ठ में, विष्णु का दक्षिण कुक्षि में, मधुसूदन का दक्षिण बाहु में, त्रिविक्रम का दक्षिण कन्धे में, वामन का वाम पार्श्व में, श्रीधर का वाम बाहु में, हृषीकेश का वाम कन्धे में, पद्मनाभ का पीठ में, और दामोदर का कमर में, ध्यान करके तिलक न्यस्त करना चाहिये। बचे हुए गोपीचन्दनादि को धो कर उस जल को "वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः" कहकर शिर में लगा लेना चाहिये।।६७।।

ऊर्ध्व-पुण्ड्र की महिमा

सर्वप्रथम ललाट देश में ऊर्ध्व–पुण्ड्र तिलक की रचना का विधान सर्वजनों के पक्ष में निर्दिष्ट है; ललाट–उदर आदि क्रम से ही तिलक धारण की विधि निरूपित हुई है।।६८

जो पुरुष ऊर्ध्वपुण्ड्र त्यागकर पुण्य कार्यों का अनुष्ठान् करता है, उसके वे सब कर्म निष्फल होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ऊर्ध्वपुण्ड्र–विहीन होकर संध्या–वंदनादि करने से उसका फल राक्षसों की वृद्धि करता है, और ऐसा मनुष्य भी नरकगामी होता है।।६६।। ऊर्ध्वपुण्ड्र में जो त्रिपुंड्र की रचना करता है, वह पुरुष नराधमों में गिना जाता है। ऊर्ध्व–पुण्ड्र तिलक एक भगवत्– मन्दिर का प्रतीक है। भौहों से ऊपर की ओर जाने वाली दो लकीरें मानों भगवत् आसन के दो खम्भे हैं। बीच में खाली स्थान पर श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं, ऐसी भावना की जाती है। ऊर्ध्वपुण्ड्र स्वरूप हरिमन्दिर भग्न करने वाले को नरक में जाना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं।।१००।।

मृत्यु का समय प्राप्त होने पर भी वक्रपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र धारण करना मनुष्य को उचित नहीं है। उस समय श्रीनारायण के अतिरिक्त अन्य सांसारिक वस्तु का स्मरण नहीं करना चाहिये। श्रीविष्णु की निर्माल्य, धूपावशेष और चन्दन धारण करा कर वैष्णव को गोपी–चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जिसके ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र दिखाई नहीं देता, उसका दर्शन करना उचित नहीं है, उसको देखने पर सूर्य का दर्शन करके शुद्ध होने का विधान है। १०१।।

वैष्णवों और ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र ही धारण करना चाहिये। अवैष्णव आदि ही त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं। वेद के जानने वाले इस प्रकार नियम निर्दिष्ट कर गये हैं।

त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्ध्वपुण्ड्रं न दृश्यते।
तं स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं न कुर्वीत वैष्णवानां त्रिपुण्ड्रकम्।
कृत त्रिपुण्ड्रमर्त्तस्य क्रिया न प्रीतये हरे।।

जिस ब्राह्मण के ललाट–देश में त्रिपुण्ड्र दिखाई देता है; किन्तु ऊर्ध्वपुण्ड्र दिखाई नहीं देता; उसको स्पर्श करने से या उसको देखने से वस्त्रों–सहित स्नान करना चाहिये। अतः वैष्णवगण ऊर्ध्वपुण्ड्र के स्थान में त्रिपुण्ड्र की रचना कभी न करें। जो पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करके कार्य करते हैं, उनका वह कार्य हरि के सन्तोष का कारण नहीं होता।।१०२–१०३।

श्रीभगवान ने कहा है– उर्ध्वपुण्ड्रधारी मनुष्य जिस किसी स्थान में देह त्याग क्यों न करे, चाण्डाल होने पर भी वह विमान में आकर मेरे लोक में सुख भोगता है।।१०४।। जो ब्राह्मण मध्य में खाली स्थान न रखकर ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं, वे नराधम हैं, क्योंकि वे वहाँ अवस्थित श्रीनारायण और लक्ष्मी को दूर कर देते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।१०५।।

तिलक–रचना करने में अंगुलियों का नियम या प्रयोग स्मृति में इस प्रकार लिखा है– अनामिका अंगुली वांछित फल की देने वाली है, मध्यमा आयु को बढ़ाने वाली है, अंगुष्ठ–पुष्टि–साधक है और तर्जनी अंगुली मोक्ष को देने वाली है।।१०६।

गोपीचन्दन के स्पर्शमात्र से हर व्यक्ति तत्काल पवित्रता लाभ करता है। जो पुरुष वैष्णवजन को एक टुकड़ा गोपीचन्दन देता है, इससे उसके एकाधिक शत (अर्थात् एक सौ एक) कुलों की रक्षा होती है।।१०७।। जो मनुष्य नित्य ललाट में कलि के पापों को हरने वाली सदा पवित्ररूपिणी, हरिमन्त्रसंयुता द्वारका की मृत्तिका (गोपीचन्दन) धारण करते हैं, वे पापकर्म से घिरे रहने पर भी यम का दर्शन नहीं करते, अर्थात् उनके प्रति यमराज का कुछ अधिकार नहीं रहता।।१०८।। हे अम्बरीष! जो पुरुष नित्य लालट देश में गोपीचन्दन का ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करते हैं; महापाप नष्ट करने के लिये उनका ही दर्शन करो।।१०९।।

तुलसी–कण्ठी धारण–प्रकरण

तुसली–काष्ठ की बनी माला जो व्यक्ति श्रीहरि को अर्पण करके फिर स्वयं धारण करते हैं, वे निःसन्देह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ हैं।।११०।। जो पुरुष तुलसीकाष्ठ–निर्मित माला कण्ठ देश में वहन करता है, वह अपवित्र हो या आचार–भ्रष्ट हो, मुझको प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह

नहीं।।१११।। जो पुरुष तुलसीकाष्ठ की माला हरि को निवेदन करके भक्ति–सहित धारण करते हैं, उनमें कोई भी पाप नहीं रहता। देवकी–नन्दन श्रीहरि उनके प्रति सदा सन्तुष्ट रहते हैं।।११२।।

तुलसी काष्ठ की माला से अलंकृत होकर भ्रमण करने वाले वैष्णव को दुःस्वप्न–दुर्घटना और शस्त्र का भय नहीं रहता।।११३।।

पंचम विलास

श्रीचैतन्यप्रभुं वन्दे बालोऽपि यदनुग्रहात्।
तरेन्नानामत–ग्राहव्याप्तं पूजा–क्रमार्णवम्।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से अज्ञानी व्यक्ति भी अनेक प्रकार के मत–मतान्तररूपी मगरमच्छों से भरे हुए श्रीभगवान् के पूजा–क्रम रूपी सागर को पार कर जाता है। अनेक प्रकार पूजा–पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उनमें से किस पूजा–पद्धति को अंगीकार करके साधक अपने इष्ट को प्राप्त कर सकता है, उसका ज्ञान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है।।१२३।।

पूजा-पद्धति प्रकरण

कृते श्रुत्युक्तमार्गः स्यात्, त्रेतायां स्मृतिभावितः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलौवागमसम्भवः।।
अशुद्धाः शूद्रकल्पा हि ब्राह्मणाः कलिसम्भवाः।
तेषामागममार्गेण शुद्धिर्न श्रौतवर्त्मना।।

रागानुगीय टीका– अनेक भगवत्–स्वरूपों की अनेक प्रकार की पूजा–पद्धतियाँ प्रचलित हैं। उन विभिन्न स्वरूपों के प्रतिपाद्य ग्रन्थों में उनका वर्णन मिलता है। फिर युगों के अनुकूल पूजा पद्धतियों का भी वर्णन मिलता है। उपरोक्त श्लोकों से ज्ञात होता है कि सत्ययुग में उपास्य इष्टदेव की वेद–विधि के अनुसार पूजा करनी चाहिये। त्रेता युग में स्मृतियों में जो पूजा–विधि है, उसका पालन करना चाहिये। द्वापर में पुराणों में वर्णित पूजा का विधान है। कलियुग में आगम–सम्मत पूजा विधि को अंगीकार किया गया है।–

आगम–शब्द से तन्त्र ग्रन्थों का अभिप्राय है, जो साधारणतः साधन के सहायक हैं। समस्त वैष्णवाचार्यों ने विशेषकर श्रीमन्महाप्रभु ने एकमात्र श्रीमद्भागवत को साध्य–साधन विषय में प्रामाणिक शास्त्र घोषित किया है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में राजा निमि ने नवयोगेश्वरों से हर युग के उपास्यदेव तथा उनकी पूजा, आराधना का पूछा है। श्रीकरभाजन योगेन्द्र ने कहा– "नाना तन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु। (श्रीभा० ११.५.३१)

कलियुग में जिस भागवत–स्वरूप की तन्त्र–विधान के अनुसार पूजा–आराधना होती है, उसे सुनिये।

तात्पर्य यह है कि यहाँ "आगम–सम्मत" शब्द से श्रीभगवत–

मतानुसार तन्त्र के विधान से पूजा विधि का विधान है।

तन्त्र–ग्रन्थ भी दो प्रकार के है। एक तो वेदानुगत तन्त्र–ग्रंथ हैं; दूसरे वेद–विरुद्ध तन्त्र ग्रन्थ हैं। बृहद् गौतमीयतन्त्र, क्रमदीपिका तथा श्रीनारद–पंचरात्र ही वेदानुगत तन्त्र ग्रन्थ हैं। महाभारत के भीष्म पर्व, शान्ति पर्व में इसका उल्लेख है। इनके अनुसार वैष्णवों के लिये पूजा का विधान है। शैवतन्त्र, शाक्ततन्त्र (देवी भागवत) ये वेद–विरुद्ध तन्त्र ग्रन्थ हैं। देवी भागवत तो एक शाक्त व्यक्ति के द्वारा रचित कल्पित तन्त्र ग्रन्थ है। न तो यह कोई पुराण है और न ही उपपुराण है। शैव शाक्त उपासक इसे श्रीवेदव्यास रचित कहकर वंचना मात्र ही करते हैं दुराग्रहवश। इनमें परब्रह्म को जगत् का कारण न कहकर शिव–दुर्गा को जगत् का कारण कहा गया है। किसी विषय में वेद–मत से इसकी संगति नहीं है। ध्यातव्य है कि नारदपंचरात्र जो आज कल प्राप्त होता है वह प्रामाणिक नहीं। इसमें कुछ–कुछ श्लोक प्राचीन पञ्चरात्र के मिलते हैं किन्तु अनेक श्लोक वेदविरुद्ध भी देखे जाते हैं।

कलियुग में ब्राह्मण की शुद्धि अथवा ब्राह्मणत्व तन्त्र–वर्णित विधान से मानी गयी है। वेद–वर्णित विधान से शुद्ध बाह्मणत्व स्वीकार नहीं किया गया है।

पूजा-आसन प्रकरण

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की पूजा के समय या स्मरण–जप के समय वैष्णव–भक्तों को मृगछाला, व्याघ्र–चर्म के आसन पर नहीं बैठना चाहिये, श्रीमन्महाप्रभु का यही आदेश है। अनेक प्रकार के आसनों के दोषों को भी बताया गया है।

नारदपंचरात्र में विद्वानों ने कहा है कि बांस के बने आसन पर बैठकर भजन–पूजा करने से दरिद्रता पैदा होती है, धनका नाश होता है। पत्थर के आसन से बीमारी –रोग पैदा होते हैं। नंगी भूमि पर बैठने से अनेक प्रकार के दुख और लकड़ी की चौकी या कुर्सी पर बैठकर भजन पूजा करने से दुर्भाग्य और तृणों के आसन से अपयश तथा पत्तों के आसन से मन में भ्रम, चंचलता पैदा होती है। कुशों के आसन पर बैठकर भजन–पूजा से बीमारी नाश होती है और कम्बल के आसन पर बैठकर भजन–स्मरण करने से सब प्रकार के दुखों का नाश होता है।।१२४।।

इस प्रकार कम्बल के आसन पर बैठकर श्रीविग्रह का ध्यान–पूजा करनी चाहिये। श्रीभगवान् का नाम संकीर्तन उनका स्तुति–गान तथा पूजा आदि करने से मनुष्य को परम शान्ति और अभीष्ट फल भक्ति की प्राप्ति होती है।

ध्यान, मूर्ति-पूजा प्रकरण

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वपाप प्रणाशनं।
पीताम्बरधरं कृष्णं पुण्डरीकनिभेक्षणम्।।
रक्तनेत्राधरं रक्तपाणिपादनखं शुभं।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं नानारत्नविभूषितं।।
तद्धामविलसन्मुक्ताबद्धहारोपशोभितं।
नानारत्न प्रभोदभासि–मुकुटं दिव्यतेजसम्।।

विशुद्ध कम्बल के आसन पर बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण का गौतमीय तन्त्रानुसार ध्यान करना चाहिये– भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान समस्त पापों को नाश करने वाला है। श्रीकृष्ण का श्यामवर्ण का श्रीविग्रह है एवं वे पीताम्बर धारण कर रहे हैं। उनके नेत्र कमल के समान लाल कान्तियुक्त हैं तथा उनके होंठ, हथेली, पद–तलवे एवं हस्त–पद नख भी लाल वर्ण के हैं। उनका वक्षःस्थल कौस्तुभमणि से प्रकाशित हो रहा है और अनेक मणिमय हारों से विभूषित है। वे हार समूह कौस्तुभ की प्रभा से चमक रहे हैं। उन्होंने अनेक मणियों के दिव्य तेज से देदीप्यमान सुवर्ण मुकुट धारण कर रखा है।।१२५–१२७।।

रागानुगीय टीका–मूल ग्रन्थ में इस प्रकरण से पहले ध्यान और पूजा के अधिकार के लिये अनेक अनुष्ठानों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है; यथा, भूत–शुद्धि, प्राणायाम, मातृका–न्यास, श्रीमूर्तियां एवं शक्तियां तथा अंगादि अनेक प्रकार के न्यासों का वर्णन किया गया है। वे वस्तुतः शुद्धरागानुगा भक्ति के साधकों के लिये अनुकरणीय नहीं हैं। स्मार्तमताव–लम्बी वैधी–भक्ति के साधकों के लिये अथवा अश्व–मेधादि यज्ञों और गौ–दानादि पुण्य कर्मों के फलों की प्राप्ति ही जिनका लक्ष्य है, उन साधकों के लिये वे आचरणीय हो सकते हैं। श्रीपाद सनातन गोस्वामी ने भी संस्कृत टीका में ऐसा अभिमत प्रकट किया है। विशुद्ध भक्ति के द्वारा जो एक मात्र श्रीकृष्ण–चरणों की प्रेम–सेवा चाहते हैं, उनके लिये तो श्रीकृष्णनाम मात्र ही सर्व उपद्रवों को नाश कर परम निर्मल बना देता है।

यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।
स्तोत्रैर्वा अर्हणाभिर्वा किमु ध्यानेन कथ्यते।।

भगवान् श्रीकृष्ण के नाम के उच्चारण, संकीर्तन मात्र से ही जब उपद्रव अर्थात् देह मन की अशुद्धि, पूजा में अनधिकार, प्राणायाम द्वारा मन एकाग्रतादि जैसे समस्त उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, फिर उनके श्रीविग्रह के ध्यान, उनकी श्रद्धा प्रीतिपूर्वक मूर्तिसेवा की महिमा का क्या कहना ? अर्थात् उससे भगवत्–प्राप्ति पूर्वक सम्यक् शान्ति एवं आत्म–प्रसन्नता प्राप्त होती है।।१२८।

मूर्ति-प्रकरण –

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव जी से श्रीभागवत (११.२७. १२ से १४) में कहा है–हे उद्धव ! मेरी मूर्ति

आठ प्रकार की होती हैं–पत्थर की, (नीमादि) लकड़ी की, अष्टधातु की, मिट्टी–चन्दनादि की, चित्रमयी, बालुकामयी, मणिमयी तथा मनोमयी। चल और अचल ये दो प्रकार की मूर्तियाँ मेरा मन्दिर हैं अर्थात् इनमें मैं निवास करता हूँ।।१२६–३०।।

अचल–मूर्ति के पूजन में रोजाना आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये। चल–मूर्तियों में यह बात पूजक की इच्छा पर निर्भर करती है। चाहे आवाहन करे और चाहे न करे। किन्तु बालुकामयी मूर्ति का नित्य आवाहन तथा विसर्जन करना आवश्यक है। मिट्टी–चन्दनमयी, तथा चित्रमयी मूर्तियों को स्नान न कराकर केवल मार्जन ही करना चाहिये।।१३१।।

रागानुगीय टीका–प्रसंगानुक्रम से यहां यह भी ज्ञातव्य है कि गृहस्थियों द्वारा जो श्रीविग्रह घर में पूजा के लिये स्थापित किये जाते हैं, उनकी आकृति ७–८ इंच से बड़ी नहीं होनी चाहिये। उनकी वैदिक प्राण–प्रतिष्ठा की भी आवश्यकता नहीं होती। श्रद्धा–प्रेम सहित उनमें अपने उपास्य इष्टदेव के स्वरूप का अन्तर्प्रवेश निश्चित कर लिया जाता है। किसी मन्दिर में इच्छानुसार आकृति में बड़ी मूर्ति की वैदिक प्राण–प्रतिष्ठादि का करना आवश्यक है। मन्दिर में खण्डित मूर्ति की स्थापना–पूजा का भी निषेध है।

श्रीशालग्राम शिला-प्रकरण

श्रीभगवान् ने कहा है, क्या खण्डित, क्या स्फुटित, क्या भग्न, क्या पार्श्व–भग्न, क्या विभिन्न, जैसी ही क्यों न हो, शालग्राम–स्थली से उत्पन्न हुई शिला में कोई दोष नहीं है।।१३२।। क्या खण्डित, क्या स्फुटित, क्या भग्न जैसी ही क्यों न हो–शालग्राम में कोई दोष नहीं होता है।।१३३।। जो मूर्ति जिस पुरुष की अभीष्ट है, यत्नसहित उसी मूर्ति की पूजा करे। शालग्रामशिला के चारों ओर एक कोश परमित स्थान में देह त्याग करने से कीट देशोत्पन्न नराधम, भी वैकुण्ठ को प्राप्त होता है। श्रीशालग्राम की प्रतिष्ठा नहीं होती।

रागानुगीय टीका–सब प्रकार की श्रीमूर्तियों में श्रीभगवान् अधिष्ठित रहते हैं। श्रीभगवान् का निष्कपटभाव ही प्रत्येक श्रीमूर्ति को सच्चिदानन्द–रूप में परिणत कर देता है। श्रीशालग्राम–मूर्ति में स्वयं श्रीनारायण का अधिष्ठान है। अतः समस्त भगवत् स्वरूपों की भाव–पूर्वक पूजा श्रीशालग्राम की पूजा में सम्पन्न हो जाती है।

पुराणों में उल्लेख है कि जालन्धर नाम का दैत्य महा विक्रमशाली और उपद्रवी था। उसे कोई देवता भी मारने में समर्थ न था। कारण यह था कि उसकी पत्नी तुलसी एक महा सती पतिव्रता थी। उसके

पातिव्रत धर्म के कारण उसके पति का संहार करने में कोई भी समर्थ न था। अतः एक दिन सब देवताओं ने मिलकर भगवान् श्रीनारायण को उसके विनाश की प्रार्थना की।

श्रीभगवान् उसकी प्रबल शक्ति के रहस्य को जानते थे। उन्होंने जालन्धर–दैत्य का ही रूप धारण कर तुलसी का पातिव्रत भंग कर दिया। जब तुलसी को यह पता लगा तो उसने श्रीभगवान् को पाषाण होने का शाप दे दिया। भक्तवत्सल श्रीभगवान् ने उस शाप को स्वीकार कर लिया और कहा, "मैं इस शाल ग्राम में प्रवाहित गण्डकी नदी के तट पर पाषाण रूप में वास करूंगा। हे तुलसी ! आज से तुम भी सुन्दर गुल्म (वृक्ष) के रूप में जगत् में सबकी वन्दनीया–पूज्या हो जाओगी। तुम्हारे विना मैं कहीं भी किसी रूप में कोई भी समर्पित सामग्री स्वीकार न करूंगा।" इस प्रकार श्रीशालग्राम नाम से श्रीभगवान् समस्त भगवत् स्वरूपों के अंशीरूप में पूजा स्वीकार करते हैं। उनकी पूजा अति सुगम सहज भी है।

शास्त्रों में श्रीशालग्राम के अनेक वर्ण–रूप तथा गुण–दोष वर्णन किये गये हैं; परन्तु गुण–दोष सकामी पुरुषों के लिये हैं। प्रेमसेवा–कामी उपासकों के लिये हर प्रकार, हर आकृति–वर्ण के श्रीशालग्राम सर्वमंगल विधाता हैं। श्रीभगवान् कभी किसी का अमंगल नहीं करते। भक्तों के मंगल निमित्त स्वयं शाप तक को स्वीकार कर लेते हैं।

षष्ठ विलास

श्रीचैतन्यप्रसादेन तद्रूपं गोकुलोत्सवं।
मनोज्ञं यष्टुकामस्य मूर्त्यर्चा–विधिरुच्यते।
स्वयं व्यक्ताः स्थापनाश्च मूर्तयो द्विविधा मताः।
स्वयं व्यक्ताः स्वयं कृष्णः स्थापनास्तु प्रतिष्ठया।।

श्रीकृष्णमूर्ति–पूजन प्रकरण

जो साधक, स्वयं उनको ही मोहित करने वाली गोकुलोत्सव स्वरूप श्रीनन्दनन्दन कृष्ण की मूर्ति की पूजा करने के अभिलाषी हैं, उनके लिये श्रीशचीसुत गौरांगदेव की कृपा से मूर्ति–पूजा की विधि वर्णन करते हैं।।१३४।। मूर्ति दो प्रकार की हैं, (१) स्वयं प्रकाशित और (२) स्थापित। स्वयं–प्रकाशित मूर्ति को साक्षात् श्रीकृष्ण जानना चाहिये। जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा होती है उनको "स्थापित" कहते हैं।।१३५।।

रागानुगीय टीका–पहले आठ प्रकार की मूर्तियों का वर्णन किया जा चुका है। यहां दो प्रकार की मूर्तियों का अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् के अप्रकट–धाम में पधारने पर श्रीवज्रनाभ ने असंख्य मूर्तियाँ निर्माण कराकर जगह जगह स्थापित कीं। यवनों के आक्रमण के समय वे भूमिगत कर दी गयीं।

समय पाकर उन्हीं श्रीमूर्तियों ने अधिकारी भागवतों को स्वप्न देकर भूमि से बाहर आगमन किया। जैसे श्रीगोपालजी (श्रीनाथजी), श्रीगोविन्दजी, श्रीबांकेबिहारीजी आदि। इन्हें स्वयं–प्रकाशित श्रीकृष्ण–रूप ही कहा गया है। जिन मूर्तियों को निर्माण कराकर प्राण–प्रतिष्ठा पूर्वक मन्दिरों में प्रतिष्ठित किया। वे सब स्थापित मूर्तियाँ हैं।

सिद्धान्ततः श्रीभगवद्–विग्रह चाहे स्वयं–प्रकाशित हुआ हो, अथवा निर्माण कराया गया हो, उसे स्वयं–प्रकाश या स्वयंभू ही जानना चाहिये। निर्माणकर्ता अथवा चित्रकार के हाथों से भी श्रीभगवान् स्वयं स्वेच्छा से प्रकाशित होते हैं। वे ही शिल्पकार के माध्यम से अपने रूप–माधुर्य–ऐश्वर्य को प्रकाशित करते हैं। उपासकों की धारणा, भावनानुसार तथा अधिकारानुसार वे अपने श्रीविग्रह को प्रकटित करते हैं। अतः सब ही श्रीभगवद् विग्रह स्वयंभू स्वयं–प्रकाशित जानने चाहियें।

यह बात अनुभव–सिद्ध है कि कोई भी शिल्पी या चित्रकार एक मूर्ति या चित्र का दुबारा हू–बहू निर्माण करने या चित्रित करने में असमर्थ है। लाख यत्न करने पर भी हर एक श्रीविग्रह अपना माधुर्य एवं लावण्य, अंग–प्रत्यंग स्वयं प्रकाशित करता–कराता है विभिन्न आकृतियों तथा मुद्राओं में। अतः समस्त श्रीभगवद्विग्रह चाहे धातु–काष्ठ आदि के हों, चाहे चित्रित हों, वे उपासकों की भावनानुसार स्वयं प्रकाशित होते हैं।

श्रीकृष्ण–मूर्ति की सेवा आरम्भ करने से पहले उनका श्रद्धापूर्वक आवाहन करना चाहिये। अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क समर्पण करना चाहिये।

फिर शंख में दूध, दही, घी, मधु, और शर्करा, लेकर क्रमानुसार अलग–अलग रूप में स्नान कराना चाहिये। भक्तगण, सर्वदा पंचामृत स्नान की विधि नहीं देते, किन्तु देश–काल के भेद से अर्थात् जयन्ती, उत्सव आदि विशेष दिनों में उसकी व्यवस्था देते हैं।।१३६।।

पंचामृत को शंख में डालकर स्नान कराना चाहिये। उससे पहले श्रीशंख की इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये। हे पाञ्चजन्य ! पहले तुम समुद्र से प्रकट हुए थे, विष्णु ने तुमको हाथ में धारण किया, और देवता तुम्हारा सम्मान करते हैं, तुमको नमस्कार करता हूँ।

हे पाञ्चजन्य ! तुम्हारी गर्जना से मेघ, देवता और असुरगण डरते हैं, तुम्हारी दीप्ति दस हजार चन्द्रमाओं के समान है, तुमको नमस्कार करता हूँ।।१३७–१३८।।

श्रीहरि को स्नान कराते समय सहस्रनाम पाठ करने पर, प्रति वर्ण

में सौ कामधेनु के दान का फल प्राप्त होता है।।१३६।। जो पुरुष पूजाकाल में श्रीहरि के नामों का कीर्तन करता है, वह सब वेदों के पढ़ने का पुण्य प्राप्त करता है।।१४०।

श्रीभगवद्गीता-माहात्म्य

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयी यतः।
सर्वधर्ममयी यस्मात्स्मातेतां समभ्यसेत्।।

श्रीमद्भगवद् गीता साक्षात् कमलनाभ श्रीहरि के मुखकमल से निकली है, उसको भली भाँति अध्ययन करना चाहिये, अन्यान्य अनेक शास्त्रों की क्या आवश्यकता है? श्रीगीता सर्वशास्त्रमयी, सर्वदेव–मयी और सर्वधर्ममयी है, अतएव उसका अभ्यास करना चाहिये।१४१–४२

पुराण पाठ-माहात्म्य

जो पुरुष शास्त्र का विचार करने वाले हैं, जो वेदाध्ययन में नियुक्त रहते हैं, जो पुराण संहिता पढ़ते और सुनते हैं, जो स्मृतिशास्त्र की व्याख्या करते हैं, जो धर्म–विषय का उपदेश देते हैं और जो वेदान्त में अत्यन्त अनुरागी हैं, वही इस जगत् को धारण किये रहते हैं। वे जो यह समस्त अभ्यास करते हैं, इसके माहात्म्य से पापध्वंस होने के कारण वे श्रीहरि–धाम में जाते हैं। वहां बुद्धि–भ्रम की सम्भावना नहीं है।।१४३–१४४।।

वस्त्र-तुलसी चन्दन प्रकरण

जो पुरुष नील वर्ण से रंगा जीर्ण (फटा पुराना) और दूसरे का पहरा हुआ वस्त्र देवदेव श्रीहरि को अर्पण करते हैं, वे सब प्रकार के पापों में लिप्त होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में लिखा है कि मेषरोमज अर्थात् मैढ़े के रोम से बने वस्त्र अथवा रेशमी वस्त्र नील वर्ण का होने से दूषित नहीं है।।१४५।।

जो नित्य तुलसी दल–लग्न चन्दन का लेपन श्रीहरिचरणों में करते हैं, उनका अभिलषित फल सिद्ध होता है।।१४६।। श्रीहरि को तुलसी काष्ठ का चन्दन प्रदान करने पर वह चन्दन–अर्चक के पहले सौ जन्म के संचित समस्त पाप ही भस्म कर डालता है।।१४७।। तुलसी काष्ठ के चन्दन से श्रीहरि की पूजा करने पर, एक दिन की पूजा में ही सौ वर्ष की पूजा का फल मिल जाता है।।१४८।।

सप्तम-विलास

कुमनाः सुमनस्त्वं हि याति यस्य पदाब्जयोः।
सुमनोऽर्पणमात्रेण तं चैतन्यप्रभुं भजे।।
श्रीमदंगनि तैर्भक्त्या समालिप्यानुलेपनैः।
निवेद्यीत्तम पुष्पाणि तन्मुद्राञ्च प्रदर्शयेत्।।

पुष्पादि-प्रकरण

जिनके चरणकमलों में पुष्प अर्पण करते ही दुष्ट मनवाला व्यक्ति भी स्वच्छ–मनवाला हो जाता है, उन

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का मैं स्मरण करता हूँ।।१४६।।

तुलसी–चन्दन–केशर–कर्पूर आदि उत्तम वस्तुओं का श्रीभगवान् के श्रीविग्रह पर लेप करके उत्तम सुन्दर पुष्पों को हाथ में लेकर उनके चरणों में अर्पण करना चाहिये।।१५०।।

वनोत्पन्न अथवा नगरोत्पन्न या आरामज (बगीचे में उत्पन्न हुए) अपर्युषित (ताजे) अविच्छन्न (साबत) सिक्त (जल से छिड़के हुए) कीटादि जीव–शून्यरहित विशुद्ध कुसुमों द्वारा श्रीहरि की पूजा करनी चाहिये।

मालती, तुलसी, पद्म, केतकी, मणि और कदम्ब फूल, लक्ष्मी और कौस्तुभ के समान श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले हैं।।१५२।। हे खगपते! स्वर्ण–दान, गो–दान और पृथ्वी–दान न करके कार्त्तिक–मास में श्रीहरि को मालती–कुसुम प्रदान करो।।१५३।।

जो पाटल (गुलाब) पुष्प से सर्वपाप नाशक श्रीहरि की उपासना करते हैं, वे पुण्यवान्, निःसन्देह उनके परम–धाम में जाते हैं।।१५४

श्मशान–वृक्षोत्पन्न अथवा चैत्य–वृक्षोत्पन्न, अर्थात् जिस वृक्ष की थांवला आदि बनाकर पूजा की गयी हो, उस वृक्ष का पुष्प एवं भूमि में गिरा हुआ पुष्प और कलियाँ; ये सब देव–देव श्रीजनार्दन को प्रदान न करें। सफेदवर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्ण का पुष्प प्रदान न करें। कण्टक–वृक्षोत्पन्न–पुष्प, शुभ्रवर्ण और सुगन्धि–पूर्ण होने पर प्रदान किया जा सकता है।।१५५।। पद्म, उत्पल, चम्पक, तुलसी, बक, और बकुल–पुष्प तथा बेल–पत्र और गंगा–जल, बासी होने पर भी दूषित नहीं होते।।१५६।। धतूरा कृष्णवर्ण–कूटक और आक ये सब पुष्प श्रीहरि को प्रदान नहीं करने चाहियें।।१५७।

यदि पुष्प प्राप्त न हो तो चोरी करके भी लाया जा सकता है, इसमें दोष नहीं है। मनुजी कह गये हैं कि देवता के लिये चुराया हुआ पुष्प चोरी में नहीं गिना जाता।।१५८।।

श्रीजनार्दन कभी तुलसी के बिना पूजा ग्रहण नहीं करते, इस कारण तुलसी प्राप्त न होने पर, उसका काष्ठ श्रीविग्रह के अंग में स्पर्श करावें। यदि वह भी न मिले, तो तुलसी का नाम उच्चारण करके जनार्दन की पूजा करनी चाहिये।

जो पुरुष तुलसी–पत्र युक्त नैवेद्य दूसरे देवताओं को निवेदन करता है, वह ब्रह्मघाती, गोघाती और गुरु की स्त्री से सम्भोग करने वाले के समान पापी होता है। अतएव कहा गया है कि तुलसी पत्र युक्त नैवेद्य सदा श्रीहरि को निवेदन करना चाहिये दूसरे किसी देवी–देवता को नहीं।

हे देवर्षे! एक मात्र तुलसी–पत्र

द्वारा हरि की पूजा करने पर, समस्त पुष्प और समस्त पत्र द्वारा पूजा करने का फल मिल जाता है।।१६१।। बासी पुष्प और बासी जल त्याग दें, किन्तु तुलसी–दल और गंगा जल बासी होने पर भी नहीं त्यागने चाहियें।।१६२।। तुलसी का दल और मंजरी श्रीहरि के मस्तक में समर्पित होने पर, वे करोड़ सुवर्ण–दान जनित पुण्य से भी अधिक फल प्रदान करते हैं।।१६३।। जो पुरुष तुलसी के कोमल दल से केशव की श्रीमूर्ति को पूजते हैं, फिर तीर्थ यात्रादि में उनको समय बिताने का क्या प्रयोजन है ?।।१६४।।

जो पुरुष बिना स्नान किये तुलसी छेदन करके पूजा करते हैं, वे निःसन्देह अपराधी होते हैं और उनके सम्पूर्ण कर्म विफल होते हैं रुग्ण अथवा वृद्धावस्था में मानसी स्नान कर लेने का विधान है।

तुलसीचयन-मन्त्र

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशव–प्रिया।
केशवार्थे चिनामि त्वां वरदा भव शोभने।।
त्वदंगसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्रांगि ! कलौ–मल–विनाशिनि।।

हे शोभने ! हे तुलसि ! अमृत से तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, तुम सदा ही श्रीकेशव की प्यारी हो, श्रीकेशव की पूजा के लिये मैं तुमको चयन करता हूँ, तुम वरदायिनी होओ। हे पवित्र शरीर वाली ! हे कलि के पापों को हरने वाली ! तुम्हारे अंगोत्पन्न पत्र से मैं जिस प्रकार श्रीहरि की पूजा कर सकूँ, तुम वही करो।।१६६–१६७।।

हे द्विजगण ! वैष्णवगण कभी द्वादशी तिथि में तुलसी–छेदन न करें। गरुड़पुराण में लिखा है कि धर्म का जानने वाला मनुष्य यदि परमायु के घटने की कामना न करे, तो रविवार में दूर्वा और द्वादशी तिथि में तुलसी चयन न करे, क्योंकि ऐसा करने से परमायु घटती है।।१६८।। श्रीकृष्ण नामाष्टकरूप मन्त्र से श्रीहरि को पुष्पांजलि अर्पण करे। पूर्वकथित विधान से पूजा करने में यदि असमर्थ हों, तो अष्टनाम में ही पूजा करें, इसी में सब पूजा का फल मिल जाता है। उक्त अष्टनामों के अन्त में "नमः" जोड़कर पूजा करें; यथा, श्रीकृष्णाय नमः, श्री वासुदेवाय नमः, श्रीनारायणाय नमः, श्रीदेवकीनन्दनाय नमः, श्रीयदुश्रेष्ठाय नमः, श्रीवार्ष्णेयाय नमः, असुराक्रान्त–भारहारिणे नमः और धर्मसंस्थापकाय नमः। इस प्रकार से पूजा करनी चाहिये।

अष्टम-विलास

श्रीचैतन्यप्रभुं वन्दे यत्पादाश्रय वीर्यतः।
संग्रहणात्याकरब्राताद्रंको रत्नावलीमयम्।।

जिनके चरणकमलों के आश्रय से मुझ दीन–जन ने आकर (सागर–स्थानीय) सम्पूर्ण शास्त्रों से रत्नों

का संग्रह करना आरम्भ किया है, उन्हीं श्रीचैतन्यमहाप्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।।१६६।।

धूप-दान प्रकरण-

पुष्पाञ्जलि अर्पण के बाद धूप–अगरबती जलाकर दाहिने हाथ में लेकर पृथ्वी से श्रीमूर्ति की नाभि तक ऊंचा उठाकर घुमावें और बायें हाथ से घण्टी बजाते हुए श्रीहरिनाम का कीर्तन करना चाहिये।।१७०।।

धूप–आरती उतारते समय इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये–

वनस्पति–रसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

बालछड़–गुग्गुल–अगर आदि वृक्षों के रस से बने हुए उत्कृष्ट सुगन्ध से पूर्ण सब देवताओं के सूंघने योग्य इस धूप–गन्ध का हे प्रभो आप ग्रहण कीजिये।।१७१।

फिर अत्यन्त उज्ज्वल तेजयुक्त समस्त दिशाओं का अन्धकार हरने वाले और बाहर–भीतर ज्योतिः सम्पन्न दीपक से आरती उतारनी चाहिये। जिस पुरुष की जैसी शक्ति हो, वह उसी के अनुसार गाय के घी से दीपक प्रज्ज्वलित करे। अथवा असमर्थ होने पर घी की जगह सुगन्धित तैल से भी दीपक प्रज्ज्वलित किया जा सकता है।।१७२

चर्बी आदि से बने धूप, मोमबत्ती आदि से कभी आरती नहीं उतारनी चाहिये। कस्तूरी का प्रयोग धूप आदि में निषिद्ध नहीं है।।१७३।। श्रीकृष्ण के सम्मुख दीपदान करने पर, पापों से छूट कर ज्योतिःस्वरूप वैकुण्ठ–पद प्राप्त होता है।।१७४।। दीपदान के समान दान नहीं। जो व्यक्ति हरि–मन्दिर में मनोहर दीप– तरु निर्माण करते हैं, वे सुर–पुर में जाकर परम शोभा से विभूषित होते हैं।।१७५।। जो लोग कार्तिकमास में हरि–मन्दिर में दीपमाला अर्पण करते हैं, वे सब स्वर्ग में जाकर चन्द्रमा के सदृश शोभित होते हैं।।१७६।।

नैवेद्य-प्रकरण

तदनन्तर तुलसीदलयुक्त नैवेद्य दोनों हाथों में लेकर भगवान् को अर्पण करना चाहिये। "हे भगवन्! यह नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ, आप ग्रहण कीजिये।।१७७।। अति उत्तम घृतयुक्त सटट्ी के चावलों का अन्न, घृत और शर्करायुक्त नैवेद्य तथा यव की खीर देवदेव हरि को प्रदान करनी चाहिये। नैवेद्य इत्यादि का अभाव होने पर फल अर्पण करना चाहिये।।१७८।।

निषिद्ध-नैवेद्य

बैंगन का भर्ता, कच्चे केले और कुसुम–फूल का साग, लसूड़ा, प्याज, लहसुन, मांस, सिरका, गोंदयुक्त पदार्थ, शराब, ये सब वस्तुएँ भोग नहीं लगानी चाहियें। गाजर, पलाश–टेसूपुष्प, कुकुरौंधा, गूलर

तथा गोल कद्दू, इनका भक्षण करने से द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति) का पतन होता है।।१७९।।

बैंगनी बैंगन, भुना हुआ अन्न और मसूर–ये सब द्रव्य, जिस पुरुष के उदर में जाते हैं, श्रीहरि उससे दूर रहते हैं।।१८०।।

श्रीभगवान् के प्रसाद को पहले श्रद्धापूर्वक मन से वैष्णवों को अर्पण करना चाहिये। बलि, विभीषण, भीष्म, कपिल, नारद, अर्जुन, प्रह्लाद, अम्बरीष, वसु, वायुसुत, शिव, विष्वक्सेन, उद्धव, अक्रूर, सनकादि और शुकादि वैष्णव–गण श्रीहरि का यह प्रसाद ग्रहण करें ऐसी भावना करनी चाहिये।।१८१।।

भोग लगाने के बाद गुवाक, (सुपारी) जातीफल, (जायफल) जायफल के पत्ते, लवंग, शीतलचीनी, इलायची, कट्फल(कायफल) और ताम्बूल–पत्र प्रभु को निवेदन करने पर देव–लोक में गति होती है, दाता अनुपम सौभाग्यवान् और अतीव रूपवान् हो जाता है। जो प्रसन्नचित्त से कपूर और सुपारी के सहित ताम्बूल श्रीहरि को अर्पण करते हैं–उन पर जनार्दन नित्य ही प्रसन्न रहते हैं।।१८२।।

इसके बाद स्वयं अथवा दूसरे के द्वारा अनेक प्रकार मनोहर गीत, वाद्य और नृत्य के द्वारा श्रीहरि को सन्तुष्ट करें।।१८३।। जो श्रेष्ठ स्वर से मधुर संगीत द्वारा श्रीहरि को सन्तुष्ट करते हैं, वे निःसन्देह सब वेदों के पाठ का फल प्राप्त करते हैं।।१८४।।

सर्वदेवमय भगवान् का नीराजन (आरती) करने से क्या मन्त्रहीन, क्या क्रिया–हीन, जो कोई पूजा की गई है, वह सभी सम्पूर्णता को प्राप्त तथा फलवती होती है।।१८५।।

आरती–प्रकरण

कृत्वा नीराजनं विष्णोर्दीपावल्यां सुदृश्यया।
तमो–विकारं जयति जिते तस्मिंश्च को भवः।।

अति मनोहर दीपों के द्वारा श्रीकृष्ण की आरती करने पर काम–क्रोधादि तमोगुण के विकार एवं अहंकार दूर होते हैं। इन विकारों के दूर होने पर फिर संसार में आवागमन नहीं होता।।१८६।।

रागानुगीय–टीका–आरती करने से पहले अपने इष्टदेव के मन्त्र के द्वारा तीन बार पुष्पांजलि देनी चाहिये। घंटा–शंख–ताल–मृदंग बजाकर आरती आरम्भ की जाती है। साथ ही आरती के पदों का गान करना चाहिये। पवित्रपात्र (बत्तीदान) में घी की बतियों से अथवा कपूर से आरती का विधान है। साधारणतः पंच प्रदीप अर्थात् पांच बत्तियों से आरती का नियम है। एक, सात अथवा अधिक बत्तियों से भी आरती उतारी जाती है।

आरती के पांच अंग हैं–पहले दीपमाला से, दूसरे जल भरे शंख

से, तीसरे धुले वस्त्र से, चौथे आम या पीपल के पत्तों से और अन्त में पांचवें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम से आरती निष्पन्न होती है।

सबसे पहले आरती को श्रीभगवान् के चरणकमलों पर चार बार घुमाएं, दो बार नाभि–देश पर, एक बार मुख–मण्डल पर तथा सात बार सब अंगों पर चारों तरफ आरती घुमानी चाहिये। इस प्रकार १४ बार आरती उतारने का नियम है।

आरती में दो भाव रहते हैं, एक तो अनेक बत्तियों के प्रकाश में श्रीभगवद् विग्रह के अच्छी प्रकार दर्शन कर उनकी छबि को हृदयंगम करना; दूसरा इष्टदेव की बलैया लेना, उन पर बलि जाना अर्थात् उनके अनिष्ट को दूर करके उसे अपने–ऊपर लेना। माधुर्य–भाव के उपासकों का आरती में यही प्रधान लक्ष्य रहता है। आरती के अन्त में श्रीभगवान् के साष्टांग प्रणाम करना चाहिये। आरती करने का तथा आरती–दर्शन करने का फल भगवत्कृपा प्राप्ति करना है।

आरती को सम्पन्न करने के बाद हाथ जोड़कर श्रीभगवान् की इसी प्रकार स्तुति करनी चाहिये।

स्तुति–प्रकरण–

ॐ नमो विश्वरूपाय, विश्व–स्थित्यन्त–हेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः।।
नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः।।

हे गोविन्द ! आप विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा लय के एकमात्र कारण हैं। आप अखिल विश्व के स्वामी हैं। हे विश्वरूप श्रीगोविन्द ! मैं आपको बार–बार नमस्कार करता हूँ।।१८७।। हे कृष्ण ! हे गोपीनाथ ! हे गोविन्द ! आप विज्ञान–स्वरूप एवं परमानन्द स्वरूप हैं, आपको मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ।।१८८।।

कलियुग के परमोपास्य श्री मन्महाप्रभु कृष्णचैतन्यदेव का विशेष स्तुति श्लोक श्रीकरभाजन योगेश्वर ने श्रीमद्भागवत (११.५.३३) में इस प्रकार वर्णन किया है–

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिव–विरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल ! भवाब्धि–पोतं
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्।।

हे प्रणतजन–रक्षक ! हे महा–पुरुष ! (हे महाप्रभो !) आपके चरणकमल सबके द्वारा ध्यान किये जाने के योग्य हैं, वे भक्ति–विरोधी–मार्गों का पराभव अर्थात् विनाश करने वाले हैं, वे अभीष्टफल–दाता हैं अर्थात् कृष्णप्रेम के प्रदाता हैं, तीर्थों के आश्रय हैं, परम पावन, शिव और ब्रह्मा के द्वारा, शरण्य अर्थात् आश्रय करने योग्य हैं, भक्तों का दुःख हरने वाले हैं और संसार समुद्र से पार करने वाले हैं; आपके चरणारविन्दों की मैं वन्दना करता हूँ।।१८९।।

प्रणाम-प्रकरण-

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्याञ्च परस्परम्।
प्रपन्नं पाहि मामीश ! भीतं मृत्युग्रहार्णवात्।।

श्रीभगवान् की स्तुति के बाद (ध्यान में) उनके दोनों चरणकमलों को (दायें हाथ से दाहिने चरण को तथा बायें हाथ से बायें चरण को) दोनों हाथों से पकड़कर उपासक को अपना मस्तक उनपर रख देना चाहिये। हे प्रभो ! मैं मृत्यु-ग्रह रूपी सागर से भयभीत हो रहा हूँ। मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए।।१६०।।

अष्टांग या दण्डवत् प्रणाम

(१) दोनों भुजा (२) दोनों चरण, (३) दोनों जानु, (४) वक्ष (हृदय), (५) मस्तक, (६) दृष्टि, (७) मन और (८) वचन;-इन आठ अंगों द्वारा प्रणाम-"अष्टांग" प्रणाम कहलाता है। यह प्रणाम नीचे के वस्त्र को छोड़कर सब वस्त्र उतार कर किया जाता है। स्त्री जाति के लिए इसे निषेध किया गया है।।१६१।।

पंचांग प्रणाम

(१) दोनों जानु, (२) दोनों भुजा, (३) मस्तक, (४) वचन और (५) बुद्धि;-इन पांच अंगों के द्वारा प्रणाम को "पञ्चांग" कहते हैं। अर्चना कार्य में पञ्चांग और अष्टांग प्रणाम ही प्रशस्त हैं।।१६२।।

भगवान् श्रीकृष्ण को केवल एकबार प्रणाम करने से जो फल प्राप्त होता है, दस अश्वमेध-यज्ञ के अवभृत अर्थात् यज्ञान्त-स्नान से भी वैसा फल नहीं प्राप्त होता। दस अश्वमेध करने वाले को फिर देह-धारण करना पड़ता है; किन्तु श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाले भक्त फिर जन्म नहीं लेते।।१६३।।

एक हाथ से श्रीभगवान् को प्रणाम करने से आजन्म सञ्चित धर्माचरण विफल हो जाते हैं।।१६४।।

वराह पुराण में श्रीभगवान् ने कहा है-यदि कोई कपड़े पहने हुए मुझे अष्टांग या दण्डवत्-प्रणाम करता है तो वह सात जन्म तक श्वेत कुष्ठी और मूर्ख होता है।।१६५।।

प्रदक्षिणा-प्रकरण

भक्ति-सहित भगवान् विष्णु के नामों का कीर्त्तन करते हुए उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए और समर्थ होने पर, साष्टांग प्रणाम-सहित प्रदक्षिणा करे। जो मनुष्य भक्ति सहित श्रीहरि की चार बार प्रदक्षिणा करते हैं उनकी अति उत्तम गति होती है।।१६६।। एक हाथ से प्रणाम, एकबार प्रदक्षिणा और असमय में (भोजन, एवं शयनकाल में) श्रीहरि के दर्शन करने से पूर्व-सञ्चित पुण्यों का नाश होता है।।१६७।।

श्रीदुर्गादेवी की एक बार, श्रीसूर्य की सात बार, श्रीगणेश की तीन बार, श्रीहरि की चार बार प्रदक्षिणा करनी करनी चाहिए। श्रीशिवजी की

आधी प्रदक्षिणा का विधान है। बांई तरफ से दायीं ओर जाकर सोम–सूत्र अर्थात् जल निकलने की नाली का लंघन नहीं करना चाहिए।।१६८।। श्रीहरि के सामने रह कर वहीं खड़े–खड़े घूम कर प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिए।।१६६।। प्रदक्षिणा करते समय इस श्लोक का उच्चारण करना चाहिए–

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणे पदे–पदे।।

भावार्थ यह है कि हे प्रभो ! इस जन्म में अथवा पूर्व जन्मों में जितने पाप मुझसे हो गये हैं, वे प्रदक्षिणा के एक–एक पद में नाश हों, मेरी यही प्रार्थना है।।२००।।

कृष्णार्पण-प्रकरण

जो पुरुष हरि–भक्तिनिष्ठ होकर श्रीहरि को कर्म–फल अर्पण करके अपने–अपने धर्मानुसार उनकी पूजा करते हैं, वे ही पुरुष धन्य हैं; उनको बारम्बार नमस्कार है।।२०१।।

अहं भगवतोंऽशोऽस्मि सदा दासोऽस्मि सर्वथा।
तत् कृपापेक्षको नित्य–मित्यात्मानं समर्पयेत्।।

मैं प्रभु का अंशस्वरूप और नित्य दास सब प्रकार से उनका टहलुआ हूँ, मैं सदा उनकी कृपा का प्रार्थी हूँ" इसलिए इस भावना से श्री भगवान् को आत्म–समर्पण करना चाहिए।।२०२।।

पूजा आराधना के बाद इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए–हे देव ! हे जनार्दन ! मन्त्र–हीन, क्रिया–हीन और भक्ति–हीन होकर मैंने जो पूजा की है वह सब परिपूर्ण हो।।२०३।।

हे नाथ ! प्रारब्धवश मैं सहस्त्र–योनियों में भी जिस–जिस योनि में देह–धारण करूँ, उस–उस जन्म में आपके चरणों में मेरी अचला भक्ति बनी रहे।।२०४।। विषयी पुरुषों की जैसे केवल–मात्र विषयों में ही प्रीति रहती है, आपको स्मरण करते हुए वैसी प्रीति मेरे हृदय में सदा बनी रहे। अर्थात् मेरे मन से वह कभी दूर न हो।।२०५।।

अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽहमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन।।
प्रतिज्ञा तव गोविन्द "न मे भक्तः प्रणश्यति"।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम्।।

अपराध-क्षमापन-प्रकरण

साधकों को आत्म–समर्पण के पश्चात् श्रीमुकुन्द से अपने अनन्त अपराधों के लिये क्षमा याचना करनी चाहिये–

हे मधुसूदन ! मैंने रात–दिन जो हजारों अपराध किये हैं, मुझको अपना दास जानकर, वे सब क्षमा कर दीजिये।।२०६।। हे गोविन्द ! आपकी यह प्रतिज्ञा है कि–"मेरा भक्त कभी नाश को प्राप्त नहीं होता" मैं इसी को स्मरण करता हुआ जीवन धारण कर रहा हूँ।।२०७।।

जो तुलसी–द्वारा श्रीशालग्राम की पूजा करते हैं, श्रीहरि उनके बत्तीस प्रकार के सेवा–अपराधों को क्षमा करते हैं।।२०८।।

सेवा अपराध

जिन आचरणों के द्वारा भगवद्कृपा से वंचित रहना पड़ता है, उन्हें 'सेवा–अपराध' कहते हैं। आगम–शास्त्र में बत्तीस प्रकार के सेवा–अपराधों का उल्लेख है, जो इस प्रकार हैं–

१–शरीर में योग्यता होने पर भी गाड़ी–रिक्शा–पालकी आदि पर चढ़कर अथवा जूता–खड़ाऊँ आदि पहन कर दर्शनों के लिये मन्दिर जाना। २–भगवत्सम्बन्धी उत्सवों में सेवा या योगदान न करना। ३–श्रीभगवान् की मूर्ति को देखकर प्रणाम न करना। ४– जूंठे मुख से श्रीभगवान् के दर्शन करना। ५–सूतक–पातक में भगवद्दर्शन करना। ६–श्रीभगवान् को एक हाथ से प्रणाम करना। (श्रीभगवान् की मूर्ति के सामने) ७– खड़े–खड़े घूम कर परिक्रमा करना। ८– पांव फैला कर बैठना। ६–पांव पर पांव चढ़ाकर बैठना। १०–नींद करना। ११–भोजन करना। १२– असत्य बोलना। १३– जोर–जोर से बोलना। १४–सांसारिक बात–चीत करना। १५–सांसारिक दुःखों को रोना। १६–लड़ाई–झगड़ा करना। १७–किसी को दण्ड देना। १८–किसी पर कृपा करना १६–दूसरों के प्रति कठोर वचन कहना। २०–कम्बल ओढ़कर सेवा में जाना। २१–परायी निन्दा करना। २२–परायी स्तुति करना। २३–अश्लील बातें या हँसी–मजाक करना। २४–अपान वायु छोड़ना। २५–श्रीभगवान् को नीरस पदार्थ भोग लगाना। २६–ऋतु के फल या साग आदि भगवत् अर्पण किए बिना खा लेना। २८–किसी वस्तु में से पहले कुछ वस्तु किसी अन्य को देकर बाकी बची हुई वस्तु को भोग लगाना। २६–अपनी प्रशंसा करना। ३०–महत् पुरुषों के पीठ पीछे बैठना। ३१–श्रीभगवत्मूर्ति के सामने किसी दूसरे को प्रणाम करना एवं ३२–अन्यान्य देवताओं की निन्दा करना।।२०६।।

सेवा-अपराध खण्डन-उपाय

साधक यदि यत्नशील एवं सतर्क रहे तो इन सेवा अपराधों से बच सकता है। श्रीभगवान् की नियम पूर्वक सेवा–पूजा, क्षमा–प्रार्थना से तथा साथ ही श्रीविष्णु–सहस्रनाम और श्रीमद्भगवद्गीता के नित्य पाठ से सेवापराध नष्ट हो जाते हैं। श्रीशालग्राम की तुलसीदल से पूजा करने पर भी सेवा–अपराध नष्ट हो जाते हैं। ऐसा शास्त्र में उल्लेख है। बार–बार यदि सेवा–अपराध बनते हों तो श्रीहरिनाम का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये, श्रीहरिनाम की कृपा से समस्त अपराधों की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है।

इन अपराधों की आलोचना का तात्पर्य यह है कि साधक को इन

समस्त अपराधों से सतर्क रहना चाहिये। इन अपराधों से मुक्त होने पर ही श्रीकृष्णप्रेम की प्राप्ति हो सकती है।।२१०।।

माला-प्रसाद प्रकरण

श्रीभगवान् की प्रसादी माला–चन्दन, चरणामृत–पुष्प आदि को श्रीभगवान् का दिया हुआ महाप्रसाद जानकर श्रद्धासहित ग्रहण करना चाहिये। उससे सब रोग एवं पापों का नाश होता है।।२११।।

श्रीभगवान् की चरण–तुलसी, चन्दन को जो मस्तक पर धारण करता है, उसे कलियुग स्पर्श करने में समर्थ नहीं होता।।२१२।। श्रीउद्धव जी ने कहा है; श्रीभगवान् की उतरी हुई माला, चन्दन, वस्त्र तथा अलंकार तथा उनका प्रसादी अन्न–व्यंजन पाने से उनकी दुस्तर माया दूर भाग जाती है।।२१३।। श्रीयमराज ने दूतों से कह रखा है–

पादोदकरता ये च हरेर्निर्माल्य–धारकाः।।
विष्णुभक्तिरता ये वै ते तु त्याज्याः सुदूरतः।।

हे दूतगण ! जो व्यक्ति श्रीहरि का चरणामृत नित्य पान करते हैं, जो उनकी प्रसादी माला धारण करते हैं एवं जो श्रीभगवान् की श्रवण–कीर्तन–स्मरणात्मक स्वरूप–सिद्धा भक्ति में श्रद्धापूर्वक अनुरक्त हैं, उन व्यक्तियों से तुम बहुत दूर रहना, उनके समीप कभी नहीं जाना।।२१४

नवम विलास

स प्रसीदतु चैतन्यदेवो यस्य प्रसादतः।
महाप्रसादजातार्हः सद्यः स्यादधामोऽप्ययम्।।

जिनके प्रसाद से मैं अधम होकर भी तत्काल महाप्रसाद (श्रीभगवान् का नाम और उच्छिष्ट आदि) पाने का उपयुक्त पात्र हो सकूँ–वे भगवान् श्रीचैतन्यप्रभु मेरे प्रति प्रसन्न हों।

चरणामृत प्रकरण :

श्रीहरि का चरणामृत–पवित्र है, तत्काल फल देने वाला; सर्वपाप–नाशक, सर्व मंगलों का मंगलस्वरूप है, सर्वदुःखहारक, दुःस्वप्न–नाशक, पुण्य देने वाला, सब उपद्रवों को हरने वाला और सब व्याधियों को नाश करने वाला है।।२१६।।

श्रीहरि के चरणामृत को सेवन करने से महापापग्रह–ग्रसित और सैंकड़ों पीड़ाओं से जकड़ा हुआ पुरुष भी क्लेश से रक्षा पाता है–इसमें सन्देह नहीं।।२१७।। जो क्षणकाल हरि–चरणामृत धारण करते हैं, उनको सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है और वे श्रीहरि के अत्यन्त प्रियजन होते हैं।।२१८।।

अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधि विनाशनम्।
सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं शुभम्।।

श्रीहरि चरणामृत पवित्र है, अकालमृत्युनाशक, सर्वव्याधिनिवारक है, और सब दुःखों का हरने वाला है।।२१६।।

श्रीतुलसी प्रकरण

"हे तुलसी ! आप प्रभु की प्रसन्नता–धारण करने वाली हो, सर्व सौभाग्य बढ़ाने वाली और नित्य आधि–व्याधि हरने वाली हो, मेरे द्वारा दिये इस अर्घ्य को स्वीकार करो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।।२२०।। हे देवि ! तुलसी ! आप मुझको श्री, यशः, कीर्त्ति, दीर्घायु, सुख, बल, पुष्टि और धर्म प्रदान कीजिए; मुझ पर प्रसन्न होइये।।२२१।

या दृष्टा निखिलाघ संघशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्ति विधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति फलदा तस्यै तुलस्यै नमः।।

जिनका दर्शन करने से सब पाप छूट जाते हैं, जो स्पर्श करने से देह को पवित्र करती हैं, जिनकी वन्दना करने पर रोग–समूह नष्ट होते हैं, जिन में जल सिञ्चन करने पर यम का भय अन्तर्धान होता है, जो रोपित होने (लगाई जाने) पर रोपणकारी के सहित भगवान् का सम्बन्ध–विशेष विधान करती हैं और जिनको श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अर्पण–करने पर प्रेम–भक्ति प्रदान करती हैं, उन श्रीतुलसी देवी को नमस्कार है।।२२२।।

नित्य श्रीतुलसी का दर्शन, स्पर्श, चिन्तन, कीर्त्तन, प्रणाम, स्तुति, रोपण, सेवा और पूजा करने से कल्याण लाभ होता है। जो पुरुष नित्य उक्त नौ प्रकार से श्रीतुलसी की उपासना करते हैं, उनको हजारों करोड़ों युगों तक श्रीहरि के धाम में वास मिलता है।।२२३।।

जिस पुरुष के घर में श्रीतुलसी की नित्य पूजा होती है, यम–दूत कभी उस घर के समीप आने में समर्थ नहीं होते।।२२४।। श्रीयमराज जिस पुरुष के मुख में, शिर में और कानों में तुलसी–दल देखते हैं, उसके पापों को दूर कर देते हैं। हे गरुड़ ! जो तीनों सन्ध्याओं में तुलसी–दल सेवन करते हैं, सौ चन्द्रायण यज्ञों से भी अधिकतर वे पवित्रता लाभ करते हैं।।२२५।।

श्राद्धविधि प्रकरण–

श्रीहरि को निवेदित किये हुए अन्न से ही दूसरे–दूसरे देवताओं की पूजा करनी उचित है और पितरों को भी वही श्रीहरि को निवेदित किया हुआ अन्न अर्पण करनेसे अक्षय फल को प्रदान करता है। २२६।। श्राद्ध के समय भक्तिसहित श्री भगवान् का उच्छिष्ट महाप्रसाद और उसी के साथ तुलसीयुक्त पिण्ड पितृ–लोक वा देवताओं को अर्पण करने से, पितृ गण करोड़ कल्प तक सम्यक् प्रकार तृप्त रहते हैं।।२२७।।

यस्तु विद्याविनिर्मुक्तं मूर्खं मत्वा तु वैष्णवम्।
वेदविद्भ्योऽददाद्विप्रः श्राद्धं तद्राक्षसं भवेत।।
सिक्थमात्रन्तु यद्भुंक्ते जलं गण्डूषमात्रकम्।
तदन्नं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम्।।

विद्याविहीन वैष्णव को मूढ़ जान कर जो व्यक्ति वेद के जानने वाले ब्राह्मण को श्राद्ध प्रदान करता है,उस श्राद्ध को राक्षस ग्रहण करते हैं। वैष्णव पुरुष, श्राद्ध के एक ग्रास–परिमित अन्न के भोजन करने पर और एक चुल्लू–प्रमाण जल पीने पर, वह अन्न सुमेरु के समान हो जाता है और वह जल समुद्र के तुल्य अक्षय हो जाता है।।२२८।।

जो परमान्न श्रीहरि के निमित्त अर्पण किया गया है, वह पितरों को प्रदान करने से अक्षय होता है, किन्तु पितरों के अर्थ जो अर्पित हुआ है,वह कभी श्रीहरि को प्रदान न करें, क्योंकि श्रीहरि ब्रह्मा–शिवादि देवताओं के भी सद्गुरु कहे गये हैं।।२२६।।

पूजा बिना भोजन दोष

अनर्चयित्वा गोविन्दं यैर्भुक्तं धर्मवर्जितैः।
श्वानविष्ठासमं चान्नं, नीरञ्च सुरया समम्।।
न त्वेवापूज्य भुञ्जीत भगवन्तं जनार्दनम्।
न तत् स्वयं समश्नीयादयद्विष्णोर्न निवेदयेत्।।

श्री हरि की पूजा किये बिना भोजन करने पर उस धर्मभ्रष्ट पुरुष का अन्न–कुत्ते की विष्ठा के समान होता है।।२३०।। परमेश्वर श्रीहरि की पूजा किये बिना आहार ग्रहण न करे और जो वस्तु श्रीहरि के निमित्त प्रदान नहीं की गई है– उसका भी स्वयं भोजन करना अनुचित है।।२३१।।

वैष्णवगण को, कभी भी श्रीहरि को अनिवेदित सामग्री नहीं खानी चाहिये। कभी ऐसी परिस्थिति हो भी तो वैष्णवजन प्रायः मानसिक रूप से उसे प्रभु को भोग लगाने के पश्चात् ही ग्रहण करते हैं।

पादोदकं पिबेन्नित्यं नैवेद्यं भक्षयेद्धरेः।
शेषाश्च मस्तके धार्या इति वेदानुशासनम्।।
त्वयोपयुक्तस्रग्गन्ध–वासोऽलंकार चर्चिताः।
उच्छिष्ट–भोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि।।
'ततोऽमृतोपस्तरणमसी' त्युक्त्वा यथाविधि।
पंचप्राणाहुतीः कृत्वा भुञ्जीत पुरतः प्रभोः।।

नित्य श्रीहरि का चरणामृत पीवे, नित्य श्रीहरि का नैवद्य सेवन करे और शेष बचे चरणामृत और तुलसी इत्यादि को सिर पर धारण करे, वेद में–इस प्रकार आज्ञा निरूपित है।।२३२।।

और ऐसी भावना रखें कि– 'हे प्रभु ! मुझको अपना दास जानो, मैं आपको निवेदन की हुई–माला, चन्दन, वस्त्र और गहने आदि से अलंकृत करके उच्छिष्ट–प्रसाद को ग्रहण कर आपकी माया को जीतूंगा।।२३३।।

फिर विधिपूर्वक ''अमृतो पस्त–रणमसि स्वाहा'' मन्त्र का उच्चारण करके पञ्चप्राणों को आहुति देकर देवदेव के सम्मुख प्रसाद ग्रहण करे।।२३४।।

सेवापराधों में श्रीमूर्ति के सम्मुख भोजन करने को भी एक अपराध गिनाया गया है। किन्तु अपने गृह

में पूजित श्रीशालग्राम शिला के सम्मुख महाप्रसाद सेवन करने में दोष नहीं है।

प्रसाद महिमा

शंखोदकं तीर्थ वराद्वरिष्ठं पादोदकं तीर्थ–गणाद्गरिष्ठम्।
नैवेद्यशेषं क्रतु कोटिपुण्यं निर्माल्यशेषं व्रतदान तुल्यम्।।
ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः।
भोक्तव्यं विष्णु–नैवेद्यं नात्र कार्या विचारणा।।
एकादशी सहस्रैस्तु मासोपोषणकोटिभिः।
तत् फलं प्राप्यते पुम्भिर्विष्णोर्नैवेद्य भक्षणात्।।

उत्तमोत्तम तीर्थों से उत्तम है शंखोदक, सर्वतीर्थों से भी श्रेष्ठ तीर्थ है चरणामृत, करोड़ यज्ञजनित पुण्य स्वरूप और निर्माल्यावशेष व्रत और दान के समान है नैवेद्य का शेष अंश।।२३५।। क्या ब्रह्मचारी, क्या गृही, क्या वानप्रस्थ, क्या भिक्षुक, जो कोई आश्रमी ही क्यों न हो–विष्णु का नैवेद्य भोजन करने में किसी प्रकार का विचार न करे।।२३६।।

विष्णु के नैवेद्य को भोजन करते ही मनुष्यों को हजार एकादशी व्रत का और करोड़ अन्य अन्य मासिक उपवास व्रत आदि का फल प्राप्त होता है।।२३७।।

दशम विलास

श्रीकृष्ण चरणाम्भोजमधुपेभ्यो नमो नमः।
कथञ्चिदाश्रयाद् येषां श्वापि तदगन्ध भाग्भवेत्।।

श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भ्रमर की सदृश आसक्त उन समस्त भक्त कुल को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ जिनका किसी भी प्रकार आश्रय ग्रहण करने पर श्वान के भी समान अतिहीन जन भी श्रीकृष्ण के पादपद्म की गन्ध का भागी बन जाता है।

वैष्णव लक्षण–

विष्णुरेव हि यस्यैष देवता वैष्णवः स्मृतः।।२३६।।

भगवान् विष्णु ही जिसके अभीष्ट देव हैं, उसी को वैष्णव (विष्णु–भक्त) कहते हैं।।२३६।।

जीवितं यस्य धर्मार्थे धर्मो हर्य्यर्थमेव च।
अहोरात्राणि पुण्यार्थे तं मन्ये वैष्णवं जनम्।।

श्रीकृष्ण की प्रीति ही जिसका धर्म है और धर्म ही जिसका जीवन है, और जो रात्रि–दिन पुण्य कार्यों के अनुष्ठान में संलग्न रहता है, उसे वैष्णव मानना चाहिये।।२४०।।

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधु भूषणाः।।

तितिक्षु (सहनशील) करुण (दयालु) सबजीवों के प्रति सुहृद, अजातशत्रु, (जिसका कोई शत्रु न हो) शान्त (कामक्रोधादिरहित), साधुओं के भूषण (तुलसी कण्ठी माला, तिलक, दैन्य, अमानी) से युक्त जो जन हैं– उन्हें साधु वैष्णव मानना चाहिये।।२४१।।

श्रीभागवत निष्ठा–

येषां भागवतं शास्त्रं सदा तिष्ठति सन्निधौ।
पूजयन्ति च ये नित्यं ते स्युर्भागवता नराः।।
येषां भागवतं शास्त्रं जीवितादधिकं भवेत्।
महाभागवताः श्रेष्ठा विष्णुना कथिता नराः।।

श्रीमद्भागवत शास्त्र सदा जिनके सम्मुख में विराजमान रहता है और जो सदा श्रीमद्भागवत की पूजा करते हैं, उन मनुष्यों को भागवत या भगवद् भक्त कहा जाता है।।२४२।।

जिनके लिये श्रीमद्भागवत शास्त्र जीवन से भी अधिक (महत्त्व पूर्ण) है, श्री विष्णु ने उन मनुष्यों को ही श्रेष्ठ महाभागवत कहा है।।२४३।।

येन सर्वात्मना विष्णुभक्त्या भावो निवेशितः।
वैष्णवेषु कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि सः।।

सर्वप्रकार से विष्णुभक्ति के भाव में मन को लगाये रखने वाले वैष्णवों के प्रति आत्म समर्पण करने वाले जन ही महाभागवत कहलाते हैं।

भगवन्नाम निष्ठा

मन्मानसाश्च मद्भक्ता मद्भक्तजन लोलुपाः।
मन्नाम–श्रवणासक्तास्तेवै भागवतोत्तमाः।।
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रृण्वन्ति हर्षिताः।
रोमाञ्चित शरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः।।

मुझमें निविष्ट चित्तवाला, मेरी सेवादि में निष्ठावान्, मेरे भक्तों के प्रति (दर्शन–सेवन हेतु) उत्सुक, मेरे नाम श्रवण में सदा आसक्तचित्त पुरुष ही उत्तम भागवत कहलाता है।।२४५।।

श्रीहरि के नाम–संकीर्तन से जिनको आनन्द प्राप्त होता है। जो प्रसन्न होकर श्रीहरि के नामों को श्रवण करते हैं, और नाम सुनने से जिनके शरीर में रोमांच, पुलक होता है, वे पुरुष ही भगवान् के श्रेष्ठ भक्त कहलाते हैं।।२४६।।

वैष्णवधर्म में निष्ठा

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स च सत्तमः।।

श्रीउद्धव के एक प्रश्न के उत्तर में श्रीभगवान् ने कहा है कि मेरे स्वयं द्वारा उपदिष्ट (अन्यान्य–लौकिक) धर्मों को त्यागने पर होने वाले गुणों एवं दोष (पाप) को जानते हुए उन धर्मों का त्याग करके जो सब प्रकार से मेरा भजन करते हैं–वे पुरुष वैष्णवों में सर्वोत्तम हैं।

वेदादि में अनेक स्थानों पर स्वयं भगवान् ने अनेक धर्मों कर्तव्यों का आदेश दिया है और उन धर्मों के सुफल एवं उन धर्मों का पालन न करने पर उनके पापादि का भी वर्णन किया है। लेकिन यहाँ भगवान् श्रीउद्धव को कह रहे हैं कि उन सब धर्मों को उनके लाभ–दोष को जानते हुए भी जो पुरुष मेरी भक्ति करते हैं– वह भक्तों में सर्वोत्तम भक्त हैं।।२४७।।

सर्वभूतेषुः यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।।

जो व्यक्ति सर्व प्राणियों में आपका भगवद् भाव दर्शन करता है एवं अपने चित्त में स्फूर्तिशील आपके अन्तर्यामी रूप का सर्वप्राणियों में अधिष्ठान मानता है वह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ है।

ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः।।

जो व्यक्ति ईश्वर से प्रेम करता है, उसके अधीन अर्थात् उसके सेवक अर्थात् भक्तों से मित्रता रखता है। अज्ञजनों के प्रति कृपा करता है एवं विद्वेषी जन अर्थात् श्रीहरि विमुखों के प्रति उपेक्षा करता है, भेद–दृष्टि से यदि देखा जाय तो वह मध्यम भक्त कहलाता है।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः।।

जो पुरुष श्रद्धा सहित श्रीविग्रह स्वरूप में श्रीहरि की पूजा करते हैं, किन्तु उनके भक्तों अथवा अन्यों की पूजा से विमुख हैं, वे प्राकृत भक्त कहलाते हैं। अर्थात् वे क्रमशः भक्ति के उत्तम अधिकारी होने के पथ पर अग्रसर हैं।

यस्तु विष्णुपरो नित्यं दृढ़भक्तिर्जितेन्द्रियः।
स्वगृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदम्।।

जो व्यक्ति नित्य भक्ति पूर्वक श्रीहरि परायण होकर अपनी इन्द्रियों को वश में करके अपने घर में रहते हुए भी वह श्रीहरि के प्रसिद्ध परम–धाम को प्राप्त करता है।

सर्वत्र वैष्णवाः पूज्याः स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
देवतानां मनुष्याणां तथैवोरगरक्षसाम्।।
येषां स्मरणमात्रेण पाप–लक्षशतानि च।
दह्यन्ते नात्र सन्देहो वैष्णवानां महात्मनाम्।।

स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, रसातल के साथ–साथ देवता, मनुष्य, सर्प एवं राक्षसों द्वारा वैष्णवगण सर्वत्र पूजनीय होते हैं। इन वैष्णव महात्माओं के स्मरणमात्र से सौ लाख (अनन्त) पाप नष्ट हो जाते हैं– इसमें कोई संशय नहीं है।

नित्यं ये प्रातरुत्थाय वैष्णवानान्तु कीर्तनम्।
कुर्वन्ति ते भागवताः कृष्णतुल्याः कलौ बलेः।।

श्रीप्रह्लाद जी ने बलि से कहा है– हे बलि! प्रतिदिन प्रातः उठकर जो वैष्णव जनों का कीर्तन करते हैं अर्थात् वैष्णव वन्दना करते हैं– वैष्णवों की चर्चा–कथा करते हैं, कलियुग में वे परमभागवत कहलाते हैं एवं वे श्रीकृष्ण तुल्य हैं अर्थात् श्रीकृष्ण के समान पूजनीय हैं।।२५३

जन्मान्तर–सहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वाल्लोकान् समुद्धरेत्।।

सहस्रों जन्म में भी जिसकी बुद्धि इस प्रकार उत्पन्न हो जाय कि मैं वासुदेव श्रीहरि का दास हूँ, वह समस्त लोकों का उद्धार करने में सक्षम है।

स याति विष्णु सालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः।
किं पुनस्तद्गतप्राणाः पुरुषाः संयतेन्द्रियाः।।

वह निश्चित ही श्रीहरि के लोक को प्राप्त करता है–इसमें संशय नहीं है। इतने पर यदि वह पुरुष संयतेन्द्रिय है–जिसने इन्द्रियों को वश में कर रखा है और वह प्राण–पण से श्रीकृष्ण को समर्पित है, तो उस पुरुष के विषय में तो कहना ही क्या है?

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्ययम्।।

श्री भगवान् कहते हैं– वेद चतुष्टय अभ्यास युक्त ब्राह्मण अर्थात् चारों वेदों का अभ्यासी ब्राह्मण यदि मेरा भक्त नहीं है, तो वह मुझे प्रिय नहीं है। किन्तु यदि श्वपच या शूद्र है और वह मेरा भक्त है तो वह मेरा प्रिय है। मेरे भक्त उस शूद्र को ही दानादि देना चाहिये, उससे ग्रहण भी करना चाहिए। जिस प्रकार मैं पूज्य हूँ, उसी प्रकार मेरा भक्त वह श्वपच भी पूज्य है।

ये मे भक्तजनाः पार्थ ! न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः।।

श्रीकृष्ण ने कहा– हे अर्जुन ! जो मेरे भक्त हैं, वे मेरे भक्त नहीं हैं। जो मेरे भक्तों के भी भक्त हैं वे ही मेरे सर्वोत्तम भक्त हैं। दास–दासानुदास–भाव ही उत्तमभाव है।।२५७।।

मुहूर्त्तेनापि संहर्त्तुं शक्तौ यद्यपि दानवान्।
मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधः क्रियाः।।

श्रीभगवान् कह रहे हैं– मैं एक मुहूर्त्त यानि एक क्षण मात्र में समस्त दानवों को संहार करने की सामर्थ्य शक्ति रखता हूँ, लेकिन अपने प्रिय भक्तों की प्रसन्नता–आमोद–प्रमोद–विनोद के लिये विविध क्रियायें–लीलाएँ करता हूँ।।२५८।।

न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते।
विष्णो रनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः।।

वैष्णवों का जन्म सामान्य मनुष्यों की भांति पूर्व–पूर्व के कर्म बन्धनों के परिणाम स्वरूप नहीं होता है। पण्डित जन कहते हैं कि श्रीहरि का अनुचरण–सेवा–भक्ति ही मोक्ष है। अर्थात् वैष्णवजन् कर्मबन्धन से मुक्त होते हैं–कर्मबन्धन से मुक्ति का नाम ही मोक्ष है। वैष्णव तो केवल मात्र श्रीहरि–भक्ति हेतु ही जन्म लेते हैं। मुक्ति की तो आकांक्षा की बात ही बहुत दूर है वैष्णवों के लिये।।२५६।।

न दास्यं वै परेशस्य बन्धनं परिकीर्त्तितम्।
सर्वबन्धन निर्मुक्ता हरिदासा निरामयाः।।

परमेश्वर श्रीहरि की दास्य भक्ति करने से संसार बन्धन कभी भी नहीं होता है। सर्वथा दोष रहित श्रीहरि के दास सब प्रकार से बन्धनों से सदैव मुक्त होते हैं।।२६०।।

रहूगणैतत् तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणादगृहाद् वा।
नच्छन्दसा नापि जलाग्नि
सूर्य्यैर्विना हत्पाद–रजोऽभिषेकम्।।

श्री जडभरत जी ने राजा रहूगण से कहा–अरे रहूगण ! महत्जन अर्थात् भगवदभक्तजन के श्रीचरणों की रज मस्तक पर धारण (अभिषेक) करने से जिसकी (श्रीहरि की प्रेमाभक्ति की) प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति, तपस्या, वैदिक अनुष्ठान, अन्नादि त्याग (व्रत), गृहस्थ धर्म परोपकारादि–मानवसेवा, वेद के अभ्यास, जल, अग्नि, सूर्य, आदि

की पूजादि–किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः।
सुदुर्ल्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुनि।।

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेव जी से कहा है– पुरुषों में ऐसे शान्तचित्त कोटि–कोटि मुक्तजनों एवं सिद्ध महापुरुषों का मिलना तो बहुत ही कठिन है, जो एक मात्र भगवान् श्रीहरि की भक्ति–परायण हो। सुदुर्लभ कहने का तात्पर्य यहां श्रीहरि भक्ति परायण प्रशान्त भक्तों का मुक्त एवं सिद्धजनों से श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया है।।२६२।।

नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति।
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि तुल्यार्थ दर्शिनः।।

श्रीशिव जी ने पार्वति से कहा– हे प्रिय ! जो नारायण परायण भक्त होते हैं वे किसी से भी भयभीत नहीं होते हैं। (यहाँ तक कि देवताओं के शाप से भी) वे स्वर्ग, अपवर्ग, (मुक्ति) व नरक इन तीनों में समान प्रयोजन के दर्शन करते हैं। क्योंकि वे नारायण श्रीहरि के भक्त होते हैं अतः न तो किसी से भय खाते हैं और न भक्ति के अतिरिक्त कुछ चाहते ही हैं।।२६३।।

नैषां मतिस्तावद् उरूक्रमांघ्रि
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत् यावत्।।

श्रीप्रह्लाद ने अपने पिता से कहा–निष्किंचन अर्थात् विद्या–विषयाभिमानशून्य परमहंस महा–वैष्णव–गणों की पदरज से जब तक इन्द्रिया–सक्त–गृहासक्त व्यक्ति अभिषिक्त नहीं होता है, तब तक उसकी मति भगवान् उरुक्रम (श्रीहरि) के पादपद्म स्पर्श करने में समर्थ नहीं होती है। अर्थात् वैष्णवगणों की पदधूलि के बिना भगवान् में उसकी बुद्धि निविष्ट नहीं होती है अथवा उसकी अनर्थ निवृत्ति या संसार वासना भी शान्त नहीं होती है। विशेषतः अनर्थरूप संसारकी निवृत्ति ही उस भगवत्पादपद्म–स्पर्शिनी मति का ही एकमात्र कारण है।।२६४।।

अहं भक्त–पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः।।

वैकुण्ठनाथ भगवान् ने द्विज से कहा– हे द्विज ! मैं भक्तों के पराधीन हूँ। भक्तों के सामने मैं स्वाधीन नहीं हूँ। मुक्ति तक की वासना से भी रहित भक्तगणों ने मेरे हृदय को ग्रास कर रखा है। भक्तों की क्या बात, भक्तों के भी जो पाल्यजन (भक्त) हैं, वे भी मुझको प्रिय हैं।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यंते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

साधुगण मेरे हृदय हैं और मैं भी साधुओं का हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते हैं और मैं भी उन्हें छोड़कर और कुछ नहीं जानता हूँ।।२६६।।

यन्नाम श्रुतिमात्रेष पुमान् भवति निर्म्मलः।
तस्य तीर्थपदः किम्वा दासानामवशिष्यते।।

जिनके नाम श्रवण मात्र से जीव निर्मल हो जाता है, उन्हीं तीर्थपद भगवान् के भक्तों के लिये और क्या शेष रह जाता है। अर्थात् भक्तों को सब कुछ सहज प्राप्त होता है।

तदस्तु मे नाथ ! स भूरिभागो,
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां,
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।

हे नाथ ! इसलिये मुझे इसी (ब्रह्माके) जन्म में या दूसरे जन्म में अथवा किसी पशु पक्षी इत्यादि के जन्म में ऐसा परम सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासों में कोई एक दास बन जाऊँ और फिर आपके चरणकमलों की आराधना करता रहूँ।

अतः श्रीभगवद्भक्त जनानां संगतिः सदा।
कार्या सर्वैः प्रयत्नेन द्वौ लोकौ विजिगीषुभिः।।

इसलिये इस लोक और परलोक दोनों लोकों को जीतने की इच्छा करने वाले मनुष्य को यत्नसहित सदा ही भगवद् भक्तजनों का संग करना चाहिये।।२६६।।

भगवद्भक्त–पादाब्ज–पादुकाभ्यो नमोऽस्तु मे।
यत्संगमः साधनञ्च साध्यं चारिवलमुत्तमम्।।

जिनका संग सम्पूर्ण साधन एवं साध्य का उत्तम फल है, उन भगवद्भक्ति परायण पुरुषों के चरण–कमलों की पादुकाओं को मेरा नमस्कार है। प्रणाम है।।२७०।।

सर्वतीर्थाधिक वैष्णवसंग–

गंगादि पुण्य तीर्थेषु यो नरः स्नातुमिच्छति।
यः करोति सतां संगं तयोः सत्संगमो वरः।।

जो मनुष्य गंगादि तीर्थों में स्नान करने की इच्छा करते हैं। और जो मनुष्य साधु–वैष्णव जन का संग करते हैं–इन दोनों में साधु–वैष्णव संग ही श्रेष्ठ है।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य
तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः।।

हे अच्युत ! अनेक योनियों में भ्रमण करते–करते जीव के जब संसार–दुःख का अवसान का समय होता है, तभी उसे सत्संग प्राप्त होता है, जब सत्संग प्राप्त होता है, तभी स्थावर जंगम के एकमात्र अधिष्ठाता सद्गति स्वरूप आपमें उसकी मति या भक्ति उत्पन्न होती है।।२७२।।

भगवत्कथामृतपानैक हेतुता–

सतां प्रसंगान्मम वीर्यसम्विदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथा।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि,
श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति।।

श्रीकपिलदेव ने माता से कहा–हे माता ! साधुजन के प्रकृष्ट संग से मेरी माहात्म्य प्रकाशक हृदय एवं कानों को सुख देने वाली कथा का उद्भव होता है। इस कथा के प्रीतिपूर्वक सेवन या श्रवण से शीघ्र ही अविद्यानिवृत्ति के आश्रय

स्वरूप मुझ भगवान् श्रीहरि में श्रद्धा, रति एवं प्रेमाभक्ति का क्रमानुसार उद्भव होता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगि–संगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः?।।

श्रीशौनकादि ने कहा है–हे भगवन्! हम आपके भक्तों के लेशमात्र संग से मोक्ष या स्वर्ग की भी तुलना नहीं करते हैं। फिर मर्त्यलोक के मनुष्यों द्वारा वाञ्छित अन्य–अन्य विषयों की तो बात ही क्या है। अर्थात् संसार के अन्य समस्त विषय एवं इच्छाएँ तो किसी कोटि में ही नहीं हैं।।२७४।।

क्षणार्द्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत् संगि–संगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः?।

प्रचेताओं के प्रति श्रीशिव ने उपदेश किया है कि आपके संगीजनों के संग जो आधे क्षण का समय है उसकी तुलना मोक्ष या स्वर्ग के सुखों से भी नहीं की जा सकती है। फिर मरणधर्मा मानवादि के राज्य सुख सम्पत्ति की क्या बात है। अर्थात् यह समस्त राजसुख, धन दौलत, मान–सम्मान वैष्णव–संग के तुल्य कदापि नहीं हो सकते।।२७५।।

दुर्ल्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्ल्लभं मन्ये वैकुण्ठ–प्रियदर्शनम्।।

क्षणभंगुर देहधारियों में मानव जन्म दुर्लभ है। उस मानव जन्म में भी वैकुण्ठनाथ के प्रियजनों का दर्शन तो और दुर्लभ है। यह बात राजा विदेह ने नवयोगेन्द्र ऋषिगण से कही है कि हे ऋषिगण! मैं आपको साक्षात् मधुसूदन का पार्षद मानता हूँ। विष्णुपार्षदगण सभी को पवित्र करने के लिए ही पृथ्वी पर विचरण करते हैं। अतः आज इस पृथ्वी तल पर आपके दुर्लभदर्शन प्राप्त कर मेरा मानव जन्म सफल हुआ।

असत्संग दोष–

वरं हुतवहज्वाला पञ्जरान्तर्व्यवस्थितः।
नशौरि–चिन्ताविमुखजन–सम्वासवैशसम्।।

श्रीकात्यायन संहिता के वचन हैं–कि अग्नि–ज्वाला स्वरूप पिंजड़े के बीच वास करना पड़े तो श्रेष्ठ है किन्तु श्रीकृष्ण–कथा–विमुख जनों के साथ रूपी क्लेश को न भोगना पड़े। अर्थात् श्रीकृष्ण–कथा से विमुख लोगों के संग का जो क्लेश है वह अग्नि ज्वाला से घिरे हुए पिंजड़े में बन्द होने से भी बहुत ही अधिक अनर्थकारी है। असह्य है। अतः त्याज्य है।।२७७।।

अवैष्णवास्तु ये विप्राश्चाण्डालादामाः स्मृताः।
तेषां सम्भाषणं स्पर्शं सोमपानादि वर्जयेत्।।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड में श्रीउमा–महेश्वर संवाद में वर्णन है कि जो समस्त ब्राह्मण अवैष्णव हैं, वे एक चाण्डाल से भी अधिक अधम हैं। अतः ऐसे ब्राह्मणों के साथ सम्भाषण, स्पर्श, एक ही स्थान पर सोमपानादि नहीं करना चाहिए।।२७८

न तथास्य भवेद्वन्धो मोहश्चान्य प्रसंगतः।
योषित संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः।।

श्रीकपिल ने माता से कहा है—मनुष्यों को स्त्री के संग से एवं स्त्रीसंगियों के संग से जितना मोह एवं भवबन्धन होता है, उतना किसी अन्य के संग से नहीं होता।।२७६।।

अतः स्त्री का संग तो करे ही नहीं, अपितु ऐसे पुरुष का भी संग न करे जो स्त्रियों का संगी हो अथवा स्त्रियों का संग करता हो—क्योंकि यह महा अनिष्टकारी है।

अन्तं गतोऽपि वेदानां सर्वशास्त्रार्थवेद्यपि।
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात्पुरुषाधमम्।।

गरुड़ पुराण में कहा गया है कि वेदों का पारदर्शी ज्ञाता, सर्वशास्त्रों के भाव एवं अर्थ का ज्ञाता होते हुए भी जो पुरुष सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति नहीं करता है, उसे पुरुषों में अधम पुरुष ही मानना चाहिए। अर्थात् उत्तम पुरुष वही है जो सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करता है।।२८०।।

हरि पूजा विहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा।
द्विज—गो—द्वेषिणश्चापि राक्षसाः परिकीर्त्तिताः।।

वृहन्नारदीय पुराण में लुब्धको—पाख्यान के प्रारभ में लिखा है—श्रीहरि की पूजा से रहित, वेदादि सत्शास्त्रों के विद्वेषी, ब्राह्मण एवं गो से द्वेष रखने वालों को राक्षस कहा जाता है।।२८२।।

श्रीवैष्णवनिन्दादि-दोषः

योहि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम्।
करोति, तस्य नश्यन्ति अर्थ—धर्म—यशः—सुताः।।

स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीमार्कण्डेय—भगीरथ सम्वाद में कहा गया है कि हे राजन्! जो व्यक्ति भगवद्भक्तों का उपहास करता है, उसके धर्म, धन (अर्थ), यश एवं सन्तान—ये समस्त नष्ट हो जाते हैं।।२८२।।

करपत्रैश्च फाल्यन्ते सुतीव्रैर्यमशासनैः।
निन्दां कुर्वन्ति ये पापा वैष्णवानां महात्मनाम्।।
पूजितो भगवान् विष्णुर्जन्मान्तर शतैरपि।
प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चावमानिते।।

द्वारका माहात्म्य में प्रह्लाद—बलि सम्वाद में लिखा है—जो पाप—परायण व्यक्तिगण महात्मा वैष्णव—गण की निन्दा करते हैं, यमदूत सुतीक्ष्ण (तेजधारवाली) करपत्र (करौती—दरांत) से उनको शासित करते हैं (चीर डालते हैं)। वैष्णवों का अपराध करने वाले व्यक्तियों द्वारा सौ—सौ जन्मों तक पूजा करने पर भी उनके प्रति विश्वात्मा भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न नहीं होते हैं।।२८३।

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्चदिनानि च।
न तु कल्प सहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे।।

श्रीविष्णुधर्मोत्तर में कहा है—विष्णु भक्त यदि केवल पांच दिन ही जीवन धारण करता है तो भी वह श्रेष्ठ है, अच्छा है, अपितु केशव के प्रति भक्ति—हीन होकर सहस्त्र कल्प तक जीवन धारण करना व्यर्थ है। अर्थात् जीवन की सार्थकता भगवद् भक्ति में है न कि लम्बी आयु में। भगवद्भक्ति विहीन लम्बी आयु किस काम की? अर्थात् व्यर्थ है।

वैष्णव सम्मान

दृष्ट्वा भागवतं दैवात् सम्मुखे यो न याति हि।
न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादश वार्षिकीम्।।
यो न गृह्णाति भूपाल ! वैष्णवं गृह्यागतम्।
तद्गृहं पितृभिस्त्यक्तं श्मशानमिव भीषणम्।।
अथवाभ्यागतं दूराद्यो नार्चयति वैष्णवम्।
स्वशक्तया नृपशार्दूल ! नान्यः पाप रतस्ततः।।

स्कन्द पुराण में श्रीमार्कण्डेय–भगीरथ सम्वाद में कहा है–अकस्मात् भगवद्‌भक्त को देखकर जो उनके सम्मुख नहीं होता है। अर्थात् प्रणाम नहीं करता है, उसकी सेवा नहीं करता है, उसका सम्मान नहीं करता है–ऐसे व्यक्ति की पूजा को श्रीहरि बारह वर्ष तक ग्रहण नहीं करते हैं। हे राजन् ! घर में पधारे हुए वैष्णव को जो व्यक्ति ग्रहण नहीं करता है। अर्थात् उस वैष्णव का आदरसत्कार नहीं करता है, उसके घर को पितृगण श्मशान की भांति समझकर त्याग देते हैं। अथवा हे राजन् ! दूर से आये हुए वैष्णव जन की अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो व्यक्ति अर्चना वन्दना नहीं करते हैं, उनसे अतिरिक्त पापों में रत कोई नहीं है। अर्थात् पापी नहीं है। सामर्थ्यानुसार का अर्थ है–यदि हममें उन्हें भोजन पवाने की सामर्थ्य है तो भोजन न पवाकर केवल जलादि प्रदान करना। वस्त्र आदि प्रदान करने की सामर्थ्य होते हुए भी न प्रदान करना। औपचारिकता पूर्ण करने की भावना न रखते हुए उत्साह पूर्वक अधिक से अधिक सेवा करना ही यहाँ भाव है।

वैष्णवं जनमालोक्य नाभ्युत्थानं करोति यः।
प्रणयादरतो विप्र ! स भवेन्नरकातिथिः।।

पद्मपुराणान्तर्गत वैशाखमाहात्म्य में यम और ब्राह्मण संवाद में कहा है–हे विप्र ! जो जन वैष्णव को देखकर प्रणाम एवं आदर पूर्वक अपने स्थान से उठकर खड़े नहीं होते हैं, वे जन नरक के अतिथि होते हैं। अर्थात् नरक को प्राप्त होते हैं।

वैष्णव स्तुति

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं यद् यूयं गृहमागताः।
दुर्ल्लभं दर्शनं नूनं वैष्णवानां यथा हरेः।।

स्कन्दपुराण में लिखा है कि–(घर पर वैष्णवजन के पधारने पर यह भाव होना चाहिए) आपके मेरे घर में पधारने पर मैं धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ। (निश्चित ही) श्रीहरि दर्शन की भांति (आप) वैष्णवों के दर्शन भी अतिदुर्लभ हैं।

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।
निःश्रेयसाय भगवन् ! कल्पते नान्यथा क्वचित्।।

श्रीमद्‌भागवत दशम स्कन्ध में श्रीगर्ग मुनि के पधारने पर श्रीनन्द महाराज ने कहा है–हे भगवन् ! गृही पुरुषों के कल्याणार्थ ही महाजन पुरुष अपने स्थान से दूसरे स्थान पर पधारते हैं, किसी स्वार्थ के लिए नहीं। गृहीजन अत्यन्त कृपण हैं, एवं मुहूर्तमात्र के लिए भी घर छोड़ने में समर्थ नहीं हैं। महापुरुषगण कृपापूर्वक स्वयं उनके घर आकर दर्शन देते हैं। इसके अतिरिक्त महापुरुषों के आगमन का कोई दूसरा

कारण नहीं है।

संसारसागरं तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुंगवाः।
स भजेद्धरि–भक्तानां भक्तांस्ते पाप हारिणः।।

यज्ञध्वजोपाख्यान के आरम्भ में कहा है–हे मुनि श्रेष्ठ ! जो संसार सागर से उत्तीर्ण होना चाहते हैं, उन्हें श्रीहरिभक्तों का भजन करना चाहिए– क्योंकि वे भक्त ही उनका संसार दुःख मोचन करने में समर्थ हैं।

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि ! तदीयानां समर्चनम्।।

पद्मपुराण उत्तर खण्ड में श्रीशिव–उमा संवाद में श्रीशिवजी ने कहा है–हे देवि ! समस्त आराधनाओं में श्रीविष्णु की आराधना श्रेष्ठ है किन्तु उसकी अपेक्षा उनके प्रिय जनों (वैष्णवजनों की) आराधना और भी अधिक श्रेष्ठ है।

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः।
न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः।।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन वैष्णवान् पूजयेत् सदा।
सर्वं तरति दुःखौघं महाभागवतार्चनात्।।

जो व्यक्ति श्रीगोविन्द की अर्चना करके उनके प्रिय जनों (वैष्णवों) की पूजा नहीं करता, वह भगवद्भक्त न होकर एक दाम्भिक ही है। अतः सर्वकाल में पूर्ण प्रयत्न करके वैष्णव जन की पूजा–अर्चना करनी चाहिए– क्योंकि महाभागवतजन की पूजा अर्चना से मनुष्य समस्त दुःखसागरों से सहज ही उत्तीर्ण हो जाता है।

वैष्णव शास्त्र माहात्म्य

वैष्णवानि च शास्त्राणि ये शृण्वन्ति पठन्ति च।
धन्यास्ते मानवा लोके तेषां कृष्णः प्रसीदति।।

स्कन्दपुराण में श्रीब्रह्मा–नारद संवाद में कहा गया है–जो जन समस्त वैष्णव–शास्त्रों को सुनते हैं एवं पढ़ते हैं वे जन मानवलोक में धन्य हैं। उनसे श्रीकृष्ण सदैव प्रसन्न रहते हैं, सन्तुष्ट रहते हैं।

वैष्णवानि च शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सर्ववन्दिताः।।

जो नर वैष्णव–शास्त्रों की स्वगृह में अर्चना–पूजा करते हैं वे समस्त पापों से रहित होकर सर्वजन वन्दित होते हैं। अर्थात् सभी लोग उनकी वन्दना करते हैं–सम्मान करते हैं।

सर्वस्वेनापि विप्रेन्द्र ! कर्त्तव्यः शास्त्र–संग्रहः।
वैष्णवैस्तु महाभक्त्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! चक्रपाणि श्रीकृष्ण की सन्तुष्टि निमित्त अत्यन्त भक्ति सहित वैष्णव–शास्त्र संग्रह करना सभी का कर्तव्य है।

तिष्ठते वैष्णवं शास्त्रं लिखितं यस्य मन्दिरे।
तत्र–नारायणो देवः स्वयं वसति नारद !।।
पौराणं वैष्णवं श्लोकं श्लोकार्द्धमथवापि च।
श्लोक–पादं पठेद्यस्तु गो सहस्र फलं लभेत्।।

हे नारद ! जिसके मन्दिर (गृह) में वैष्णव शास्त्र लिखित होकर विराजते हैं उसके घर में स्वयं श्रीनारायण वास करते हैं। जो पुराण संबंधी विष्णु माहात्म्य प्रतिपादक एक अथवा आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक पाठ करते हैं, उन्हें सहस्र

गोदान का फल प्राप्त होता है।

मम शास्त्राणि ये नित्यं पूजयन्ति पठन्ति च।
ते नराः कुरु शार्दूल ! ममातिथ्यं गताः सदा।।

श्रीकृष्ण ने श्रीअर्जुन से कहा–हे कुरुश्रेष्ठ ! जो जन नित्यप्रति मेरे शास्त्र की पूजा व पाठ करते हैं वे मनुष्य मेरे आतिथ्य को प्राप्त होते हैं–अर्थात् मेरे लिए एक अतिथि के समान पूजनीय होते हैं।

मम शास्त्र प्रवक्तारं मम शास्त्रानुचिन्तकम्।
चिन्तयामि न सन्देहो नरं तं चात्मवत् सदा।।

जो मनुष्य मेरे शास्त्रों के प्रवक्ता हैं और मेरे शास्त्रों का निरन्तर अनुचिन्तन करते रहते हैं। मैं भी आत्मवत् उनके बारे में चिन्तन करता रहता हूँ–इसमें कोई सन्देह नहीं है। चिन्तन अर्थात् उनके कल्याण के विषय में चिन्तित रहता हूँ और उनका योगक्षेम वहन करता हूँ।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये।
कल्पकोटि सहस्राणि विष्णु–लोके वसन्ति ते।।

जो जन भक्ति सहित वैष्णव जन को भागवत–शास्त्र अर्पण करते हैं, वे हजार करोड़ कल्प तक विष्णुलोक में वास करते हैं।

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे।
शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्र–संग्रहैः।।

श्रीमद्भागवत का आधा या चौथाई श्लोक भी जिसके घर में विराजमान रहता है उसे अन्य–अन्य सौ–सौ या हजार–हजार शास्त्र संग्रह करने की क्या आवश्यकता है?

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिला–दानजं फलम्।।
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्।
पठेच्छ्रुणोति वा भक्त्या गो–सहस्र–फलं लभेत्।।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने।
अष्टादश पुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः।।

जो मनुष्य प्रतिदिन भागवत पुराण पढ़ते हैं। उस श्रीमद्भागवत का प्रत्येक अक्षर पाठक के लिए कपिला–गौ के दान के समान फल प्रदान करता है।

जो मनुष्य भक्तिसहित श्री मद्भागवत का आधा या चौथाई श्लोक पढ़ते हैं या सुनते हैं, उन्हें हजार–गौ के दान का फल प्राप्त होता है।

हे मुने ! जो शुद्धचित्त से प्रतिदिन भागवत के श्लोकों का पाठ करता है, वह मनुष्य अठारह पुराणों के पाठ के फल को प्राप्त करता है।।३००

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहितः।।
पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवतोदितः।
द्वादशस्कन्ध युक्तोऽयं शतविच्छेदसंयुतः।।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः।।

वेदान्त–सूत्र का अर्थस्वरूप, महा भारत के अर्थों का निर्णायक, गायत्री का भाष्यरूप, वेद के अर्थ से परिवर्द्धित और सम्पूर्ण पुराणों में श्रेष्ठ, साक्षात् श्रीभगवान् द्वारा प्रकटित किया हुआ, द्वादश स्कन्धों एवं सौ प्रकरणों युक्त एवं अठारह हजार श्लोकों में निबद्ध ग्रन्थ है–यह श्रीमद्भागवत।

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सताम्
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किम्वा परैरीश्वरः सद्यो
हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिः तत्क्षणात्।।

महामुनि श्रीनारायण के द्वारा (संक्षिप्त रूप से) प्रकाशित इस श्रीमद्भागवत में मत्सर–हीन सज्जन पुरुषों के आचरण करने योग्य धर्म, अर्थ, काम तथा मुक्ति को भी वासना से रहित सर्वश्रेष्ठ धर्म का निरूपण किया गया है। तीनों तापों को जड़ से उखाड़ फेंकने वाली, परम कल्याणकारी वास्तव अर्थात् परमार्थभूत वस्तु की जानकारी इस श्रीमद्भागवत से प्राप्त होती है। दूसरे–दूसरे शास्त्रों से या उनमें कहे गये साधनों के आचरण से क्या परमेश्वर श्रीकृष्ण साधक के चित्त में आकर अवस्थान करते हैं?–नहीं करते हैं। किन्तु इस श्रीमद्भागवत में वर्णित धर्म का आचरण तो क्या, इसके श्रवण की इच्छा मात्र करने से साधक के हृदय में श्रीकृष्ण स्थिरतापूर्वक अवस्थान करने लगते हैं।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
उत्तम श्लोकचरितं चकार भगवानृषिः।।
निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।
तदिदं ग्राह्यामास सुतमात्मवतां वरम्।।
सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।

प्रथम स्कन्ध, तृतीय अध्याय के ४० एवं ४१ वें श्लोक में कहा है–हे ऋषिगण ! सर्व पुरुषार्थ एवं सर्वमंगलों को देने वाले सर्व शास्त्र श्रेष्ठ उत्तम श्लोक श्रीभगवान् की लीला कथाओं से परिपूर्ण तथा सर्ववेदतुल्य अथवा परब्रह्म श्रीकृष्ण के समान श्रीमद्भागवत नामक इस पुराण को जगत् के लोगों के कल्याण के लिए सर्वज्ञ ऋषि श्रीव्यासदेव ने प्रकाशित किया है।

इस श्रीमद्भागवत में समस्त वेदों एवं महाभारतादि इतिहास की सारभूत कथायें वर्णित हैं। इसे श्रीव्यासदेव ने धीर व्यक्तियों में श्रेष्ठ अपने सुपुत्र श्रीशुकदेव को पढ़ाया था।।३०३।।

सर्ववेदान्त सारं हि श्रीभागवत मिष्यते।
तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्
निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा।।

श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध के १३वें अध्याय के श्लोक १२ में वर्णित है कि–यह श्रीमद्भागवत सर्ववेदान्त का सार है जो व्यक्ति इसके कथामृत–रस से तृप्त है उसकी अन्यत्र कहीं भी रति या प्रीति नहीं होती। नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु, विष्णुभक्तों में महादेव शिव, के समान समस्त पुराणों में यह (श्रीमद्भागवत) श्रेष्ठ हैं।।३०४।।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियम्
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
यत्र ज्ञान–विराग–भक्ति–सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्
तच्छ्रण्वन विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः।।

आगामी श्लोक में कहते हैं—यह निर्मल भागवतपुराण वैष्णवादि को अतिप्रिय है। इसमें परमहंस को प्राप्त करने योग्य निर्मल अद्वितीय परमज्ञान का गान किया गया है। इसमें ज्ञान, विराग, भक्ति सहित नैष्कर्म्य अर्थात् प्रेम का आविष्कार हुआ है। अतएव भक्तिमान् होकर इसका श्रवण, पाठ और अर्थ आस्वादन करने पर भक्तों के समस्त बन्धन कट जाते हैं।।३०५।।

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृत द्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो ! रसिका ! भुवि भावुकाः।।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध, प्रथम अध्याय के तीसरे श्लोक में कहा गया है कि यह श्रीमद्भागवत शास्त्र सर्व पुरुषार्थों का देने वाले वेदरूप कल्पवृक्ष का सुपक्व फल है। यह श्रीशुकदेव के श्रीमुख से पृथ्वी पर बिना टूटे—फूटे अखण्ड रूप से गिरा है। अतएव हे रसिकजन! हे रसभावना में चतुर रसज्ञ एवं रसास्वादक भक्तजन ! अमृत—द्रव से युक्त अर्थात् अक्षय माधुर्य से युक्त इस रसमय फल का मोक्ष पर्यन्त बार—बार आस्वादन कीजिए।

वैष्णवज्ञान वक्तारं यो विद्याद्विष्णुवद्गुरुम्।
पूजयेद्वाङ्मनः कायैः स शास्त्रज्ञः स वैष्णवः।।
श्लोकपादस्य वक्तापि यः पूज्यः स सदैव हि।
किं पुनर्भगवद्विष्णोः स्वरूपं वितनोति यः।।

श्रीनारद पाञ्चरात्र में ऋषियों के प्रति श्रीशाण्डिल्य ने कहा है—जो वैष्णव ज्ञान के वाचक को विष्णु के समान गुरुरूप में मानते व जानते हैं एवं उनकी शरीर, मन एवं वाणी द्वारा पूजा करते हैं, वही वास्तव में शास्त्र को जानने वाले वैष्णव हैं।

श्रीमद्भागवत के श्लोक का एक पाद अर्थात् चौथा हिस्सा भी जो कहते हैं वे तो सदैव पूज्य हैं ही, अपितु जो भगवान् विष्णु के स्वरूप अर्थात् तत्त्व अथवा उनके धर्म आदि का माहात्म्य विस्तार पूर्वक कहते हैं उनके विषय में तो कहना ही क्या ? अर्थात् वे तो परमपूज्य हैं।।३०६।।

श्रोतव्यं साधुचरितं यशो—धर्म्म—जयार्थिभिः।
पाप—क्षयार्थं देवर्षे ! स्वर्गार्थं धर्मबुद्धिभिः।।
आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं पुण्यवर्द्धनम्।
चरितं वैष्णवं नित्यं श्रोतव्यं साधुबुद्धिना।।
कुटुम्ब—वृद्धिं विजयं शत्रु—नाशं यशो—बलम्।
करोति विष्णु—चरितं सर्वकामफलप्रदम्।।

स्कन्द पुराण में लिखा है—

हे देवर्षे ! यश की इच्छा करने वाले, धर्म की इच्छा रखने वाले, शत्रु को जीतने की इच्छा रखने वाले एवं धर्म बुद्धि द्वारा पाप को नाश करने अथवा स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को अवश्य ही भगवच्चरित्र का श्रवण करना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य आयु को बढ़ाने वाले आरोग्य को देने वाले,

यश प्रदान करने वाले और पुण्य की वृद्धि करने वाले श्रीहरि चरित को अवश्य सुनना चाहिए। विष्णु चरित श्रवण से कुटुम्बवृद्धि, विजय, शत्रुनाश, यश एवं बल की वृद्धि होती है एवं सर्वप्रकार से अभीष्ट पूर्ण होते हैं।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

श्रीमद्भागवत १।२।८ में कहा है–हे ऋषिगण ! सुचारु रूप से मनुष्यों द्वारा अनुष्ठित किये गये किसी भी धर्माचरण से यदि श्रीहरि की कथा में प्रीति उत्पन्न नहीं होती है तो वह कोरा श्रम मात्र ही है।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तञ्च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत् क्षणो नीत उत्तमः श्लोक–वार्तया।।

श्रीमद्भागवत २।३।१७ में श्री शौनक जी ने कहा है–हे सूत जी ! सूर्यदेव प्रतिदिन उदय एवं अस्त होकर समस्त लोक की आयु को वृथा ही हरण कर रहे हैं। (जो व्यक्ति श्रीहरि कथा में समय व्यतीत करते हैं, उनकी आयु वृथा नहीं है।) अतएव आप उत्तमश्लोक श्रीहरि की कथा श्रवण कराकर मेरे जीवन को सफल करें।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यदिष्टञ्च नृणामिह।
तत्सर्वं लभते वत्स ! कथां श्रुत्वा हरेः सदा।।

स्कन्द पुराण में श्रीब्रह्मा–नारद संवाद में लिखा है कि–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को सदैव श्रीहरि की कथा श्रवण करने से इन सबकी सहज प्राप्ति हो जाती है।

संसारसिन्धुमति दुस्तरमुत्तितीर्षो–
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीला–कथा–रस निषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य।।

श्रीमद्भागवत १२।४।३६ में परमहंस कुल मुकुटमणि श्रीशुकदेव जी ने कहा है कि–जो जन अनेक प्रकार की दुख–दावाग्नि से दग्ध हैं और दुष्पार दुःखसागर रूपी संसार से पार जाने की अभिलाषा रखते हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरि की लीला कथा–रस का सेवन करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। अर्थात् एकमात्र श्रीहरि की लीला–कथा–रस का सेवन करने से ही जीव भवसागर से पार जा सकता है। इसका अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्त्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुति गतां तनुवाङ्मनोभिर्ये
प्रायशोऽजित ! जितोप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।

श्रीमद्भागवत १०।१४।३ में ब्रह्मा जी ने भगवान् श्रीहरि से कहा–हे अजित् ! जो व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति के लिए किंचित् भी चेष्टा नहीं करते हैं साथ ही तीर्थ–भ्रमण आदि भी नहीं करते हैं। केवल मात्र सत्पुरुषों के निवास स्थान पर पड़े रहते हैं और सत्पुरुषों द्वारा सहज ही वर्णित होने वाली एवं स्वाभाविक रूप से

अपने आप ही उनके कानों में प्रवेश करने वाली आपकी नाम–रूप–गुण–लीला–कथाओं को शरीर, मन, वाणी से आदर पूर्वक श्रवण करते हुए जीवन यापन करते हैं; तीनों लोकों में केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा ही आप जीते जाते हैं। अर्थात् अजित् होकर भी आप उनके वशीभूत हो जाते हैं।

न कामये नाथ ! तदप्यहं क्वचिन्न
यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुख च्युतो विधत्
स्व कर्णायुतमेष मे वरः।।

श्रीमद्भागवत ४।२०।२१ में श्री राजा पृथु ने अपनी प्रार्थना में कहा है–

हे नाथ ! मोक्षकामी महान् सज्जनों के अन्तर्हृदय से मुख मार्ग द्वारा निःसृत आपकी पाद–पद्म सुधा के यशोगान श्रवण करने की सम्भावना जिसमें नहीं है, मैं उस मोक्षपद की कामना नहीं करता हूँ। अपि च मेरी तो प्रार्थना है कि अपने गुण–कीर्तन एवं श्रवण करने के लिए मुझे अयुत (दश हजार) कान प्रदान करें–यही मेरा एक मात्र वर है–यही वर मैं आपसे मांगता हूँ।

नून दैवेन निहिता ये चाच्युत कथासुधाम्।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः।।

जो जन अच्युत श्रीहरि की कथा रूपी अमृत छोड़कर असत्गाथा (ग्राम्यवार्ता–लौकिक राग द्वेष पूर्ण वार्ता) को सुनते हैं। वे विष्ठाभोजी सूअर की भांति दैव द्वारा दण्डित ही हैं।

बिले बतोरुक्रम–विक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्ण पुटे नरस्य।
जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत !
न चोपगायत्युरुगाय–गाथाः।।

श्रीमद्भागवत २/३/२० में श्री शौनक जी ने कहा है– जो मनुष्य श्रीकृष्ण का गुणानुवाद श्रवण नहीं करते हैं, उनके दोनों कान एक व्यर्थ छिद्र की भाँति ही हैं। और जो जन भगवान् श्रीहरि की गुण गाथा का गान नहीं करते हैं उनकी दुष्ट जिह्वा मेंढ़क की जिह्वा की भाँति है। (जो व्यर्थ ही टर्र–टर्र करती रहती है।)

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसंगात्
सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये।
कुर्वन्ति काम सुख लेश लवाय दीना
लोभाभिभूत मनसोऽकुशलानि शश्वत।।

श्रीमद्भागवत में ३/६/७ में श्री ब्रह्मा जी ने कहा है– हे प्रभो ! सर्व अशुभनाशक आपकी श्रवण कीर्तनादि गुणगाथा से जिनकी इन्द्रियाँ विमुख हैं, वे दैव या विधाता या भाग्यों के सताये हुए दीन लोग हतबुद्धि के कारण लेशमात्र कामसुख पूर्ति हेतु निरन्तर लगे रहते हैं।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छोत्र मनोऽभिरामात्।
क उत्तमः श्लोक–गुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात।।

श्रीमद्भागवत १०/१/४ में राजा श्रीपरीक्षित् ने कहा है–भगवान्

श्रीकृष्ण के गुण और उनकी लीलाएं इतनी मधुर और स्वभाव से ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषों के हृदय में किसी भी प्रकार की लालसा तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आकर्षित होकर नित्य निरन्तर उनका गायन किया करते हैं। जो लोग महा भवरोग से छुटकारा पाना चाहते हैं उनके लिये तो वे लीलाएँ ओषधरूप ही हैं–अर्थात् जन्ममृत्यु के चक्कर से छुड़ा देने वाली हैं। यहाँ तक कि जो विषय प्रेमी हैं, उनके मन कान भी उनमें रम जाते हैं–ऐसी स्थिति में पशुघाती अथवा आत्मघाती के अतिरिक्त ऐसा और कोई जीव नहीं होगा जो उत्तम श्लोक श्रीभगवान् के गुणगान में प्रेम न करे।

श्रीभगवद्धर्म प्रतिपादनमाहात्म्य-

वैष्णवे वैष्णवं धर्मं यो ददाति द्विजोत्तमः।
ससागर महीदाने यत् फलं लभतेऽधिकम्।।

स्कन्दपुराण में ब्रह्म नारद संवाद में कहा है कि–द्विजोत्तम वैष्णव को वैष्णव धर्म प्रदान करने वाले व्यक्ति को सागर–सहित समस्त पृथिवी दान करने से भी अधिक फल प्राप्त होता है।

अज्ञानाय च यो ज्ञानं दद्याद्धर्मोपदेशनम्।
कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं हि तत् स्मृतम्।।

स्कन्द पुराण में यह भी लिखा है कि–जो व्यक्ति अज्ञानी मानव को धर्मोपदेश करता है, उसे समस्त पृथिवी दान करने के सम्मान ही पुण्य लाभ होता है।

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे।
वासुदेवे भगवति यया संलभ्यते रतिः।।

श्रीमद्भागवत ७/७/२७ में श्रीप्रहलाद ने कहा है– हे बालक गण! इस प्रकार षड्वर्ग अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मात्सर्य को जीतकर भगवान् श्रीहरि में प्रेम करने का प्रयास करना चाहिये तभी भगवद्विषयक प्रीति या रति प्राप्त होती है।

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह।।

श्रीमद्भागवत ११/२/३३ में श्रीकवि योगेश्वर ने कहा है कि आँख मूंद कर भागने वाले व्यक्ति को तो गिरने–गिराने का भय रहता है किन्तु भागवत धर्मों का आश्रय ग्रहण करने पर कभी भी किसी प्रकार के विघ्न से उस व्यक्ति को स्खलित या पतित होने का कोई भय नहीं होता है।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्तया तदुत्यया।
नारायण परो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम।।

श्रीमद्भागवत ११/३/३४ में श्री प्रबुद्ध योगेश्वर ने कहा है– हे राजन्! इस प्रकार भागवत–धर्मों की शिक्षा प्राप्त करते–करते इससे उत्पन्न प्रेमभक्ति के सहारे श्री नारायण–परायण होने पर व्यक्ति दुस्तर माया से पार हो जाता है।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः।।

श्रीमद्भागवत १०/३१/६ में गोपिकाओं ने कहा है– हे प्रियतम ! आपका कथा रूपी जो अमृत है वह संसार–दावाग्नि से संतप्त जीवों को जीवन प्रदान करने वाला है। ब्रह्मा–शिव–सनकादिक आत्माराम कविगण भी उसकी प्रशंसा करते हैं। वह कथा रूपी अमृत समस्त कल्मष या क्लेशों को नाश करने वाला है। आपकी यह कथा सुनने मात्र से मंगल प्रदान करने वाली है। जो उसे सबसे उत्कर्ष रूप में निरूपण करते हैं, वे सबसे बड़े दाता अर्थात् सर्व पदार्थों को दान करने वाले हैं।

कीर्त्तनेऽप्यत्र तज्ज्ञेयं माहात्म्यं श्रवणेऽस्य यत्।
सिद्धयति श्रवणं नूनं कीर्त्तनात् स्वयमेव हि।।

श्रवण के विषय में जो माहात्म्य प्रकाशित किया गया है, उसे संकीर्तन के विषय में भी जानना चाहिये। क्योंकि श्रवण तो संकीर्तन से अपने आप ही सिद्ध हो जाता है।

शास्त्राभ्यासस्य चाभावे पूर्वेषां लोकविश्रुताम्।
सतामाधुनिकानाञ्च कथां बन्धुषु कीर्त्तयेत्।।

शास्त्राभ्यास अर्थात् शास्त्र श्रवण संभव न होने पर अपने मित्र–बन्धु परिवार–पुत्र–पत्नि आदि के साथ सदैव प्राचीन या आधुनिक लोक कल्याणकारी साधु–सन्तों की कथाओं का गान–कीर्तन–श्रवण करना चाहिये।

एकादश विलास

श्रीचैतन्यं प्रपद्ये तं महाश्चर्य प्रभावकम्।
प्रसादे यस्य दुष्टोऽपि भगवद्भक्तिमान् भवेत्।।

उन महान् आश्चर्यजनक अद्भुत प्रभाव वाले श्री चैतन्य महाप्रभु की मैं वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा से दुष्ट व्यक्ति भी भगवद् भक्ति युक्त हो जाता है।

मत्कर्म कुर्वतां पुंसां क्रियालोपो भवेद्यदि।
तेषां कर्माणि कुर्वन्ति तिस्रः कोट्यो महर्षय।।

पद्मपुराण में स्वयं भगवान् ने कहा है–मेरे परायण रहते हुए यदि मेरे भक्त की कुछ क्रियाओं–अर्थात् अन्य कर्मों का लोप या अभाव हो जाता है तो उन छूटे हुए कर्मों को तीन करोड़ महर्षि पूरा कर उस अभाव को दूर कर देते हैं।

स्मरन्ति मम नामानि ये त्यक्त्वा कर्मचाखिलम्।
तेषां कर्माणि कुर्वन्ति ऋषयो भगवत्पराः।।

आदि पुराण में कहा है कि–जो पुरुष अन्य समस्त कर्मों का त्याग करके मेरे पावन नामों का स्मरण करते हैं, उनके उन त्यक्त कर्मों को भगवत्परायण ऋषिगण पूरा करते हैं।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृत स्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्।।

श्रीमद्भागवत ११/२/३६ में कवि श्री योगेन्द्र ने कहा है कि शरीर से वाणी से, मन से अथवा इन्द्रियों से, बुद्धि द्वारा या आत्मा

या चित्त द्वारा, विधि–विधान के आदेश से अथवा अपने स्वभाववश जो–जो कुछ आप करो, वह समस्त परमेश्वर श्रीनारायण को समर्पण करना चाहिए।

पूजा-आराधना

अयं स्वस्त्ययनं पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः।
यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः।।

श्रीमद्भागवत १०/८४/३७ में श्री वसुदेव नारद संवाद में कहा है कि–न्याय एवं धर्म से अर्जित धन द्वारा श्रद्धा सहित परम पुरुष पुरुषोत्तम भगवान् का बुद्धिमान गृहस्थ ब्राह्मण या द्विज द्वारा अर्चन करना चाहिए, यही उसके कल्याण का उत्तम पथ है।

आराधनाऽसमर्थश्चेद्दद्यार्च्चन–साधनम्।
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चन–दर्शनम्।।
निस्ताराय तदेवालं भवाब्धेर्मुनि–सत्तम!
नैकञ्च यस्य विद्येत् सोऽधोयात्येव नान्यथा।।

अगस्त्य संहिता में लिखा है कि जो पुरुष भगवान् की पूजा–आराधना करने में असमर्थ हैं, वे आराधना पूजा हेतु धन या सामग्री प्रदान करें। यदि वे धन या वस्तु देने में भी असमर्थ हैं तो उन्हें श्रीभगवान् की पूजा–अर्चना के दर्शन करने चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! यह पूजा–आराधना का दर्शन भी भवसागर से पार होने का एक उपाय है। जो व्यक्ति इनमें से एक भी नहीं करते हैं अर्थात् न पूजा करते हैं, न पूजा हेतु धन–सामग्री देते हैं, न पूजा के दर्शन करते हैं, वे निश्चय ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।

दर्शन माहात्म्य

पूजितं पूज्यमानञ्च ये पश्यन्ति जनार्द्दनम्।
कपिला–शत दानस्य नित्यं भवति तत्फलम्।।

पद्मपुराण में पुलस्त्य–भगीरथ संवाद में लिखा है–जो जन पूजित या पूजा होते समय (आरती आदि के समय) भगवान् जनार्दन का दर्शन करते हैं, उन्हें नित्य एक सौ कपिला अर्थात् कामधेनु के दान करने का पुण्य–फल प्राप्त होता है।

सामान्यभक्त्या यद्दत्तं तद्धि पद्भ्यां प्रतीच्छति।
एकान्त भावोपगमैर्मूर्द्ध्ना द्विजवरोत्तमाः।।
अनन्तो भगवान् विष्णुस्तस्य काम विवर्ज्जितैः।
यदेवदीयते किञ्चिन्तदेवाक्षयमुच्यते।।

श्रीविष्णुधर्मोत्तर के तृतीयकाण्ड में लिखा है–हे द्विजवर! अनन्त भगवान् श्रीविष्णु को जो द्रव्य सामान्य भक्ति से प्रदान किया जाता है उसे वे अपने चरणों से ग्रहण करते हैं। और जो द्रव्य एकान्त भाव से निवेदन किया जाय उसे वे मस्तक से ग्रहण करते हैं। और निष्काम भाव से श्री भगवान् के निमित्त जो कुछ भी दिया जाय वह अक्षय कहलाता है।

एकामपि नरो धेनुं सवत्सां विधिपूर्वकम्।
दत्त्वोद्देशेन कृष्णस्य प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम्।।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि–जो मनुष्य विधि पूर्वक बछड़े सहित केवल एक गाय भगवान् श्रीकृष्ण के निमित्त प्रदान करता है,

उसकी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण होती है।

आसने स्वागते सार्घ्ये पाद्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काऽऽचमन–स्नान–वसनाऽऽभराणि च।।
सुगन्ध–सुमनो–धूप–दीप–नैवेद्यं–वन्दनम्।
प्रयोजयेदर्च्चनायामुपचारांस्तु षोडश।।

षोडशोपचार पूजा के विषय में तन्त्र ग्रन्थ में लिखित है कि– १. आसन २. स्वागत ३. अर्घ्य ४. पाद्य ५. आचमनीय ६. मधुपर्क ७. पुनः आचमनीय ८. स्नान ६. वस्त्र १०. आभरण ११. सुगन्ध १२. पुष्प १३. धूप १४. दीप १५. नैवेद्य १६. वन्दना – इन सोलह उपचारों का अर्चनादि में प्रयोग करना चाहिये।

षोडशोपचार पूजा

१. आसन–बैठने हेतु वस्त्र या कुशा का आसन, सिंहासन आदि २. स्वागत– 'आपकी बड़ी कृपा है; 'मैं धन्य हुआ' आदि भावों द्वारा–अभिनन्दन करते हुए हर्षित होना। ३. पाद्य– जल से चरण धोना। ४. अर्घ्य– सम्मान प्रदर्शित करते हुए–धन–वस्तु आदि भेंट करना। ५. आचमनीय– मुखशुद्धि हेतु जल देना। ६. मधुपर्क– दही, घी, जल, शहद और चीनी को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत। ७. पुनः मुख शुद्धि हेतु जल देना। ८. स्नान कराना। ६. वस्त्र पहनाना। १०. आभरण–आभूषण, श्रृंगार आदि। ११. सुगन्ध–इत्र आदि समर्पण करना। १२. पुष्प–फूल या फूल मालादि। १३. धूप–धूपबत्ती– अगरबत्ती आदि। १४. दीप–दीपक जलाना १५. नैवेद्य–भोगलगाना। १६. वन्दना–स्तुति करना, गुणगान करना।

अर्घ्यञ्च पाद्याऽऽचमनं मधुपर्कऽऽचमान्यापि।
गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दशक्रमात्।।

और भी कहा है– १. अर्घ्य २. पाद्य ३. आचमन ४. मधुपर्क ५. पुनः आचमन ६. गन्ध ७. पुष्प ८. धूप ६. दीप १०. नैवेद्य यह दश उपचार कहे गये हैं।

गन्धादिभिर्निवेद्यान्तैः पूजा पञ्चोपचारिकी।
सपर्य्यास्त्रिविधा प्रोक्तास्तासामेका समाचरेत्।।

आगे कहते हैं– १. गन्ध २. पुष्प ३. धूप ४. दीप ५. नैवेद्य युक्त पूजा को पञ्चोपचार पूजा कहते हैं। उपरोक्त षोडशोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचार नामक तीन पूजाओं में से यथा–शक्ति कोई एक प्रकार से अवश्य ही पूजा करनी चाहिये।

अभाव-समाधान

उपचारोक्तवस्तूनामुपसंग्रहणेविधिः।
द्रव्याणामप्यभावे तु पुष्पाक्षतयवैः क्रिया।।

तन्त्र में लिखा है कि – किसी वस्तु के अभाव में (अथवा सामर्थ्य न होने पर) पूजा वस्तु संग्रह की विधि इस प्रकार है–यदि द्रव्य यानि पूजा–वस्तु का अभाव हो तो पुष्प, आतप (दीपक) चावल, जौ (एवं जल) आदि द्वारा पूजन सम्पन्न किया जा सकता है।

अर्चोपचारवस्तूनामभावे समुपस्थिते।
निर्मलेनोदकेनैव द्रव्यसम्पूर्णता भवेत।।

पूजन हेतु वस्तुओं के अभाव उपस्थित होने पर केवल निर्मल जल द्वारा पूजन करने पर भी समस्त द्रव्यों की सम्पूर्णता मानी जाती है।

उपचारेषु द्रव्येषु यत्किञ्चित् दुष्कृतं बुधः।
तत् सर्वं मनसा बुद्धया पुष्पक्षेपेण कल्पयेत्।।

पूजा के समय वस्तुओं में यदि कोई वस्तु दुर्लभ हो तो बुद्धिमान् जन को मानसिक रूप में पुष्प (फूल) छोड़कर कल्पना कर पूजा पूर्ण करनी चाहिये।

यद्यन्नूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम्।
तुलसीदल मात्रेण युक्तं तत् परिपूर्यते।।

अगस्त्य संहिता में तुलसी माहात्म्य में लिखा है कि श्रीराम की आराधना के साधनों में जो भी कमी हो वह तुलसी–दल मात्र के प्रयोग–संयोग से परिपूर्ण हो जाती है।

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मदयागः प्रतिमादिष्वमायिनः।
भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि।।
ततोऽनुज्ञां प्रभोः प्रार्थ्य दण्डवत्तं प्रणम्य च।
सायं भुक्त्वा यथान्यायं सुखं स्वप्यात् प्रभुं स्मरन्।।

श्रीमद्भागवत ११/२७/१५ में कहा है– श्रीविग्रह में अति उत्तम वस्तुओं द्वारा मेरी पूजा की जाती है, किन्तु निष्काम भक्तों द्वारा सहजता से प्राप्त वस्तुओं द्वारा और हृदयगत भाव से भी मेरी पूजा सम्पूर्ण मानी जाती है।

फिर प्रभु से अनुमति लेकर, प्रभु की प्रार्थना करते हुए दण्डवत् प्रणाम (केवल अधोवस्त्र पहनकर) सायं काल में यथायोग्य भोजन–प्रसाद निवेदन–ग्रहण कर प्रभु का स्मरण करते हुए शय्या पर सुख से सो जाना चाहिये।

ऊपर हम अध्ययन कर चुके हैं कि तुलसीदल मात्र से अथवा केवल शुद्धजल से भी पूजन करने पर पूजा सम्पूर्णता को प्राप्त होती है।

प्रश्न उठता है यदि जल से ही पूजा–अर्चना सम्पूर्णता को प्राप्त होती है तो अन्य अनेक वस्तुओं हेतु इतना आदेश क्यों?

ध्यान रहे कि विधि तो षोडशोपचार पूजन की ही उपयुक्त है, लेकिन यदि किसी देश में सामग्रियाँ उपलब्ध न हों, किसी संकट में अथवा आर्थिक- स्थिति के कारण अथवा धनद्रव्य हीन विरक्त–वैष्णव जन के पास संग्रह ही न हो। आततायियों के भय से किसी प्रकार गोपनीय रूप से स्वधर्माचरण की परिस्थिति बन रही हो तो क्या भावग्राही भगवान् इन वस्तुओं के अभाव में पूजा ग्रहण नहीं करेंगे? क्या विपरीत या अनुकूल सामर्थ्य न होने के कारण पूजा व्यर्थ जायगी? उत्तर है– नहीं, कभी नहीं। देश काल परिस्थिति के अनुसार पूजा सम्पूर्णता को प्राप्त होगी और भावग्राही भगवान् हमारी पूजा को स्वीकार करेंगे।

हाँ, समस्त परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। हमारे पास पर्याप्त धन है। समस्त वस्तुएँ सहज उपलब्ध हैं। अपने लिये सारे ऐशो–आराम का सामान उपलब्ध है और प्रभु की पूजा केवल शुद्ध जल से हो रही है तो–यह विचारणीय है। अतः अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार प्रभु की उत्तमोत्तम द्रव्यों से श्रद्धा एवं भावना सहित पूजा अर्चना करनी विधेय है। परिस्थितियों के अनुसार इनमें छूट है। छूट का अनावश्यक दुरुपयोग नहीं करना है।

शयन विधि

निर्गुणो निष्कलश्चैव विश्वमूर्तिधरोऽव्ययः।
अनाद्यन्तः सदानन्ते फणा–मणिविशोभिते।।
क्षीरादभिर्मध्ये यः शेते समां रक्षतु माधवः।
सबाह्याभ्यन्तरं देहमापाद–तलमस्तकम्।।
सर्वात्मा सर्वशक्तिश्च पातुमां गरुड़ध्वजः।
इति रक्षां पुरस्कृत्य स्वपेद्विष्णुमनुस्मरन्।।

तन्त्र शास्त्र में वर्णित है– जो निर्गुण निरुपाधि, आदि–अन्त हीन, अव्यय और विश्वमूर्तिधारी हैं, जो फणरूपी मणियों से शोभित अनन्तदेव की शय्या पर क्षीर समुद्र में शयन करते रहते हैं, वही माधव मेरी रक्षा करें।

वे सर्वात्मा, सर्वशक्तिधारी, गरुड–ध्वज, बाहर एवं अन्दर सिर से पैर तक मेरे देह की रक्षा करें–इसप्रकार रक्षा की प्रार्थना कर विष्णु का स्मरण करते हुए सोना चाहिये।

राम स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम्।
शयने यः स्मरेन्नित्यं दुःस्वप्नं तस्य नश्यति।।

और भी कहा है–जो मनुष्य प्रतिदिन सोते समय, श्रीराम, स्कन्द (कार्तिकेय), हनुमान, विनतानन्दन–गरुड़ और वृकोदर को स्मरण करते हैं, उनके दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं अर्थात् उन्हें बुरे स्वप्न नहीं आते हैं।

श्रीभगवदर्च्चन का माहात्म्य

न विष्ण्वाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्।।

श्रीकूर्मपुराण में लिखा है– भगवान् श्रीहरि की अर्चना–पूजा–आराधना के अतिरिक्त अन्य कोई भी वैदिक कर्म पुण्य जनक नहीं है। विष्णु श्रीहरि की आराधना ही एकमात्र पुण्य है। अतः आदि–मध्य–अन्त रहित श्रीहरि की नित्य आराधना करनी चाहिये।

भक्तिग्राह्यो हृशीकेशो न धनैर्धरणीसुराः।
भक्त्या संपूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम्।।

श्रीनारद पंचरात्र में लिखा है कि– श्रीभगवान् भक्ति के वशीभूत हैं। धन–सम्पत्ति एवं सुरा से प्राप्त नहीं होते हैं। भक्ति–पूर्ण होकर पूजन करने से समस्त कामनाओं को प्रदान करते हैं। पूर्ण करते हैं।

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरो मोक्षं लभन्ति वै।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं नराः।।

और भी कहा है– भगवान् श्रीकृष्ण–मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करने मात्र से ही मनुष्य समस्त मोक्ष प्राप्त

कर लेते हैं। तब उनका तो कहना ही क्या, जो भक्ति पूर्वक भगवान् श्रीहरि की पूजा–सेवा करते हैं।

यान् यान् कामयते कामान् नारी वा पुरुषोऽपि वा।
तान् समाप्नोति विपुलान् समाराध्य जनार्दनम्।।

वशिष्ठ जी कहते हैं– नारी या पुरुष जिन–जिन पदार्थों की कामना करते हैं, भगवान् जनार्दन की आराधना से उन कामनाओं को विपुल रूप में प्राप्त करते हैं।

यथा तरोर्मूल–निषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।।

श्रीमद्भागवत ४–३१–१२ में श्रीनारदजी के वचन हैं– जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को अच्छी प्रकार जल से सिंचन करने से उसके तने, शाखा (डालियां) उपशाखा, पत्ते, फूल आदि सभी तृप्त होते हैं, पुष्ट होते हैं एवं जिस प्रकार प्राण–रक्षा हेतु आहार ग्रहण करने पर समस्त इन्द्रियों की तृप्ति व पुष्टि प्राप्त होती है, उसी प्रकार एक मात्र अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा–द्वारा समस्त देवता–पितृगण आदि सन्तुष्ट होते हैं– उनकी पूजा स्वतः ही हो जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने वाले को अन्य किसी भी देवी–देवता–पितृ आदि की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है।

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्ज्जितैः।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः।।

स्कन्दपुराण में वर्णित है कि– 'गोविन्द' नाम का भक्तिपूर्वक या बिना भक्ति के कीर्तन किया जाय तो यह नाम जैसे प्रलयाग्नि सभी कुछ नष्ट कर देती है, उसी प्रकार समस्त पाप राशि को नष्ट कर देता है।। ३५०।।

गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले।
कीर्त्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा।।

पृथ्वी पर यदि 'गोविन्द' नाम का कोई व्यक्ति है, उसके नाम के कीर्तन अथवा बार–बार उच्चारण करने से भी हजारों पाप नष्ट हो जाते हैं। (इसीलिये परिवार में बच्चों के नाम भगवद्नामों के अनुसार रखने की प्राचीन परम्परा है)

वर्त्तमानन्तु यत् पापं यद्भूतं यद्भविष्यति।
तत्सर्वं निर्द्दहत्याशु गोविन्दानल–कीर्त्तनात्।।

लघुभागवत में वर्णन है कि– जो पाप हो रहा है, जो पाप हो चुका है एवं जो पाप भविष्य में होगा– ऐसे समस्त पाप 'गोविन्द' नाम रूपी अग्नि के कीर्तन करने मात्र से जल जाते हैं। अर्थात् तीनों काल के पाप श्रीगोविन्द के नाम कीर्तन से नष्ट हो जाते हैं।

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पाप–निर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।

बृहद्विष्णु पुराण में लिखा है कि श्रीहरिनाम में पाप–नष्ट करने की जितनी शक्ति है। सर्वदा–सदैव पाप करने वाला व्यक्ति भी उतने पाप कर ही नहीं सकता है। अर्थात्

श्रीहरिनाम में पाप–नाशकी असीमित शक्ति है।

पराक–चान्द्रायण तप्त कृच्छैर्न
देह–शुद्धिर्भवतीह तादृक्।
कलौ साकृन्माधव–कीर्त्तनेन
गोविन्द–नाम्ना भवतीह यादृक्।।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि– कलियुग में माधव भगवान् के संकीर्तन एवं श्रीगोविन्द नामोच्चारण द्वारा देह की जितनी शुद्धि होती है, उतनी शुद्धि पराक्, चान्द्रायण एवं तप्त कृच्छव्रत आदि से भी नहीं होती है। पराक् व्रत में १२ दिन तक भोजन न करके प्रायश्चित्त किया जाता है। चान्द्रायण व्रत में १ मास तक भोजन नहीं किया जाता है। इसी प्रकार तप्त व्रत में भी विशेष प्रकार के ताप से शरीर को शुद्ध किया जाता है।

अच्युतानन्द गोविन्द–नामोच्चारण भीषिताः।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है कि अच्युत, आनन्द, गोविन्द, इत्यादि नामों के उच्चारण से भयभीत होकर समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। ऐसा मैं सत्य–सत्य कहता हूँ।

सर्वपाप प्रशमनं सर्वोपद्रव–नाशनम्।
सर्वदुःखक्षयकरं हरि–नामानुकीर्त्तनम्।।

श्रीहरिनाम का संकीर्तन, सर्व पापों को शान्त करने वाला, सर्व उपद्रवों का नाश करने वाला, सर्व दुःखों को समाप्त करने वाला है।

कलि–बाधा–हरण की शक्ति

हरिनाम–परा ये च घोरे कलयुगे नराः।
त एव कृत कृत्याश्च न कलिबधिते हि तान्।।
"हरे ! केशव ! गोविन्द ! वासुदेव ! जगन्मय !"
इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान् वाधते कलिः।।

बृहन्नारदीय पुराण में कलिधर्म प्रसंग में लिखा है कि–घोर कलियुग में जो व्यक्ति श्रीहरिनाम–संकीर्तन करते हैं, निश्चय ही वे कृत्कृत्य हैं अर्थात् जो उनको करना चाहिये– वही करते हैं। कलियुग उन्हें किसी प्रकार भी बाधा प्रदान नहीं करता है। एवं जो हे हरे !, हे केशव !, हे गोविन्द !, हे वासुदेव !, हे जगन्मया! इन नामों का नित्यप्रति नामोच्चारण करते हैं, उन्हें भी कलियुग कोई बाधा या विघ्न या कष्ट नहीं पहुँचाता है।

कर्म को पूर्णता–दान

मन्त्रतस्तन्त्रतच्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्त्तनं तव।।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि–मन्त्र में (स्वर भंगादि द्वारा) तन्त्र में या तान्त्रिक अनुष्ठान में (क्रम भंगादि द्वारा) देश, काल, पात्र तथा वस्तु के कारण (दक्षिणा आदि में) जो कमी रह जाती है, वह सब आपके नाम संकीर्तन द्वारा निश्छिद्र अर्थात् वह सब कमी पूर्ण हो जाती है। भावार्थ यह है कि मन्त्र–तन्त्रादि के अनुष्ठान के साथ–साथ यदि भगवन्नाम संकीर्तन का भी आश्रय लिया जाय, नाम संकीर्तन उन

अनुष्ठानों की भूल या त्रुटियों की क्षतिपूर्ति कर देता है।

सर्वतीर्थों से अधिक

तीर्थकोटि सहस्राणि तीर्थ कोटि शतानि च।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्त्तनम्।।
विश्रुतानि बहून्येव तीर्थानि बहुधानि च।
कोट्यंशेनापि तुल्यानि नाम–कीर्त्तनतो हरेः।।

वामन पुराण में कहा गया है कि–हजारों या सैंकड़ों तीर्थों के सेवन से जो (पुण्य या फल) प्राप्त होता है, वह विष्णु (श्रीहरि) के नाम संकीर्तन से प्राप्त हो जाता है।

विश्वामित्र संहिता में कहा गया है कि–अनेकानेक तीर्थों के सेवन का जो माहात्म्य सुना जाता है वह श्रीहरि के नाम संकीर्तन के हजारवें अंश के समान भी नहीं है। अर्थात् श्रीहरिनाम–संकीर्तन का फल कोटि–कोटि तीर्थों के सेवन से हजारों गुना अधिक है।

गो–कोटिदानं ग्रहणे खगस्य
प्रयाग–गंगोदक कल्पवासः।
यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं
गोविन्द–कीर्त्तेर्न समं शतांशैः।।

ग्रहण के समय में करोड़ों गौओं का दान, गंगा तट पर प्रयाग में कल्पवास, एक हजार यज्ञ एवं सुमेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण का दान श्रीगोविन्द के नाम–संकीर्तन के सौवें अंश के एक अंश के समान नहीं है।

वाजपेय सहस्राणां नित्यं फलमभीप्स्यसि।
प्रातरुत्थाय भूपाल ! कुरु गोविन्द–कीर्त्तनम्।।
किं करिष्यति सांख्येन किं योगैर्नरनायकः।
मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र ! कुरुगोविन्द–कीर्त्तनम्।।

गरुड़ पुराण में श्रीशौनक व श्री अम्बरीश सम्वाद में वर्णन है कि–हे राजन् ! यदि तुम हजारों वाजपेय यज्ञों का फल प्रतिदिन प्राप्त करना चाहते हो तो प्रातः उठकर श्रीगोविन्द का नाम संकीर्तन किया करो। तुम सांख्य का क्या करोगे ? योग से भी हे नर नायक ! तुम्हें क्या प्राप्त होगा। यदि तुम मुक्ति भी चाहते हो तो हे राजेन्द्र ! श्रीगोविन्द का कीर्तन करो।

नामग्रहण करने वाला जगद्वन्द्य

स्त्रीशूद्रः पुक्कशो वापि ये चान्ये पापयोनयः।
कीर्त्तयन्ति हरिं भक्त्या तेभ्योऽपीह नमो नमः।।

श्रीनारायण व्यूह स्तव में कहा गया है कि–स्त्री, शूद्र, चाण्डाल अथवा अन्य पापयोनियों में जन्मे मनुष्य या जीव यदि भक्ति पूर्वक श्रीहरि का संकीर्तन करते हैं तो उनको भी प्रणाम करना चाहिए।

न देश–नियमस्तस्मिन् न काल–नियमस्तथा।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक!।।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में क्षत्र बन्धु उपाख्यान में कहा गया है कि–हे लुब्धक ! श्रीहरि के नाम संकीर्तन के लिए देश–काल सम्बन्धी किसी नियम की अपेक्षा नहीं है। देश से भाव है–स्थान, किसी भी स्थान पर वह स्थान शुद्ध हो अथवा अशुद्ध हरिनाम संकीर्तन में इसका कोई विचार या नियम नहीं है, इसी प्रकार

काल अर्थात् दिन, रात्रि, दोपहर, सायं, किसी भी समय नाम संकीर्तन किया जा सकता है। इसी प्रकार उच्छिष्ट यानि झूठे–सच्चे का भी कोई निषेध नहीं हैं। आप झूठे मुंह भी नाम संकीर्तन कर सकते हैं, (अपितु नाम संकीर्तन से आपका मुंह, देश, काल सभी पवित्र हो जायेंगे।)

न देश–काल–नियमो न शौचाशौचनिर्णयः।
परं संकीर्त्तनादेव "रामरामे"ति उच्यते।।

वैश्वानर संहिता में लिखा है– 'राम–राम'–ऐसा संकीर्तन करने के लिए किसी प्रकार का देश–काल–शौच–अशौच का नियम या निर्णय नहीं है।

रागानुगीय टीका–नाम संकीर्तन के बारे में पुनः–पुनः देश काल एवं शौच– अशौच, शुद्धि–अशुद्धि की बात कही जाती है, वह इसलिए, क्योंकि नाम संकीर्तन के अतिरिक्त जो अन्य मन्त्र या तन्त्र हैं उनके लिये अनेक नियम हैं– उदाहरणार्थ– आसन शुद्ध हो, फलां दिशा में मुख हो, मुख शुद्ध हो, घर में सूतक पातक न हो, उच्चारण अशुद्ध न हो, मन्त्रों का उच्चारण स्त्री न करें। अपवित्र स्थान–जैसे श्मशान या म्लेच्छ के घर में मन्त्रों का उच्चारण न हो, इत्यादि। लेकिन ऐसी कोई भी बाध्यता श्रीहरिनाम संकीर्तन में नहीं है।

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।।

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध में श्रीशुकदेव जी ने कहा है कि–हे राजन्! जो लोग मुक्ति चाहते हैं, अथवा जो लोग स्वर्गादि लोकों के सुख भोग के लोलुप हैं, किंवा जो जीवात्मा और परमात्मा के संयोग की इच्छा से योग मार्ग के साधन करते हैं, उन सबके लिए श्रीहरि के नाम का सर्वदा पुनः–पुनः कीर्तन करना ही सर्वतोभाव से भय रहित पद–प्राप्ति के लिए निर्णीत है।

श्रीवैकुण्ठलोक को प्राप्त कराने वाला

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्।।

श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध में कहा है कि–दुराचारी अजामिल द्वारा मरते समय पुत्र को बुलाने के लिए (श्रीनारायण) नाम का उच्चारण किया था–तो (उसके समस्त पाप नष्ट होकर) उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गयी तो जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक श्रीहरि का नाम–ग्रहण करेगा तो उसके पापों के नाश एवं धाम प्राप्ति के बारे में क्या आश्चर्य! या क्या संशय हो सकता है।

कलेर्दोष–निधेराजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्।।

श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में कलियुग में श्रीनाम संकीर्तन की विशेषता का वर्णन करते हुए श्री शुकदेव जी ने परीक्षित् से कहा–कि

हे राजन्! कलियुग दोषों की खान है—इसमें अनेक दोष हैं लेकिन इस युग में एक महान् गुण है—वह यह कि इस कलियुग में भगवान् श्रीकृष्ण के संकीर्तन से जीव सब बन्धनों से मुक्त होकर परम—धाम को प्रस्थान करता है—प्राप्त करता है। (जबकि सतयुग, त्रेता, द्वापर में जीवों को यह सुविधा प्राप्त नहीं है)

श्रीभगवान् को वशीभूत करने वाला

गीत्वा तु मम नामानि नर्त्तयेन्मम सन्निधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं "क्रीतोऽहं तेन" चार्जुन।।

आदि पुराण में श्रीकृष्ण—अर्जुन—संवाद में श्रीकृष्ण ने श्रीअर्जुन से कहा है—जो मेरे नामों का गान करता हुआ मेरे सामने नृत्य करता है, हे अर्जुन! मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ कि मैं उस (भक्त) द्वारा खरीद लिया जाता हूँ। मैं उसके प्रति वैसा व्यवहार करता हूँ जैसा एक खरीदा हुआ दास अपने खरीदार या स्वामी के साथ करता है।

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्य—क्रीतो जनार्दनः।।

आदिपुराण में श्रीकृष्ण ने श्रीअर्जुन से कहा है कि—जो मेरे नामों का गान करते हुए मेरे सामने रोने लग पड़ता है मैं उसके हाथों बिक जाता हूँ—इसके अतिरिक्त अन्य किसी के हाथों मेरा बिकना सम्भव नहीं है।

मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानां,
सकल निगमवल्ली—सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा,
भृगुवर! नरमात्रं तारयेत् कृष्ण—नाम।।

प्रभासखण्ड में वर्णित है कि—हे शौनक! समस्त मधुरों से भी मधुर, समस्त मंगलों से भी मंगल समस्त वेदरूपी लताओं का सत्फल एवं चैतन्यस्वरूप श्रीकृष्ण नाम यदि एक बार भी श्रद्धा या लापरवाही से गान किया जाय, तो यह एक श्रीकृष्ण नाम मनुष्य मात्र अर्थात् समस्त मनुष्यों का उद्धार करने में समर्थ है।

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्त्य केशवम्।।

विष्णुपुराण में वर्णित है कि—सत्ययुग में ध्यान द्वारा, त्रेतायुग में यज्ञ द्वारा एवं द्वापर युग में अर्चन द्वारा जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुग में केशव भगवान् श्रीहरि के संकीर्तन द्वारा प्राप्त होता है।

कृतेयदध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्।।

श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध में भी श्रीशुकदेवजी ने कहा है कि सत्ययुग में ध्यान द्वारा, त्रेतायुग में यज्ञ द्वारा द्वापर युग में सेवा द्वारा जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुग में श्रीहरि के संकीर्तन द्वारा प्राप्त होता है।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

वृहन्नारदीय पुराण में श्रीनारदजी ने कहा है—श्रीहरिनाम ही मेरा जीवन

है, श्रीहरिनाम ही मेरा जीवन है, श्रीहरिनाम मेरा जीवन है। कलियुग में श्रीहरिनाम के अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्यातु यत् फलम्।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति।।

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत श्रीकृष्ण अष्टोत्तरशत नाम माहात्म्य में वर्णित है कि पुण्य फलदायी श्रीअष्टोत्तर शतनाम का तीन बार पाठ करने से जो फल होता है, श्रीकृष्ण के किसी भी एक नाम के ग्रहण करने से वही फल प्राप्त होता है।

नाम्नां मुख्यतरं नाम कृष्णाख्यं मे परन्तप।
प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोचकं परम्।।

प्रभासपुराण में नारद कुशध्वज संवाद में श्रीभगवान् ने कहा है कि हे कुशध्वज ! मेरे समस्त नामों में मेरा जो 'श्रीकृष्ण' नाम है, वह मुख्यतर है। यह अशेष यानि अनेक पापों का प्रायश्चित्त स्वरूप है और समस्त पापों से मुक्ति दिलाने वाला है।

नाम–चिन्तामणिः कृष्णचैतन्य रस विग्रहः।
पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम–नामिनोः।।

और भी कहा है कि–श्रीकृष्ण नाम चिन्तामणि है। अर्थात् जिस प्रकार चिन्तामणि समस्त चिन्ताओं को दूर कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण नाम भी नामग्रहणकारी की समस्त चिन्ताओं को समाप्त कर देता है। यह श्रीकृष्ण नाम चैतन्य–रस का साक्षात् विग्रह है, यह पूर्ण है, यह शुद्ध है, यह नित्यमुक्त है और अपने नामी श्रीकृष्ण से अभिन्न है।

तदश्म–सारं हृदयं वतेदं
यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदाविकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः।।

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध में कहा है कि हे सूत ! श्रीहरिनाम के ग्रहण करने से सात्विक स्वरूप नेत्रों से जल वर्षण, शरीर में रोमाञ्च एवं हर्ष जैसे विकार यदि उत्पन्न न हों, तब उस हृदय को पत्थर के सार अर्थात् (सीमेण्ट) वज्रचूर्ण का बना हुआ ही जानना चाहिए।

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां निरये पतति स्फुटम्।।

कात्यायन संहिता में कहा गया है कि जो व्यक्ति श्रीहरिनाम के विविध माहात्म्य व फल को जानकर, सुनकर उस पर विश्वास नहीं करता है, उसे केवल कोरा अर्थवाद यानि 'केवल बढ़ाचढ़ा कर वर्णन किया गया है–वास्तव में ऐसा है नहीं'–ऐसा समझता है, मनुष्यों में वह पापी मनुष्य निश्चय ही नरक में जा गिरता है।

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते,
यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगरिहाम।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलम्,
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः।।

गुरोरवज्ञा श्रुति–शास्त्र निन्दनं
तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम्।

नाम्नो वलाद्यस्य हि पाप–बुद्धिर्न
विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।।

पद्मपुराण में श्रीनारद के प्रति श्रीसनत्कुमार ने कहा है कि– साधु–वैष्णव जन की निन्दा करने से महान् नामापराध होता है, क्योंकि साधु–सन्त्तों के साथ सदैव श्री हरिनाम उपस्थित रहता है। वैष्णव सदा नाम परायण होते हैं, नाम के आश्रित होते हैं। श्रीहरिनाम अपने प्रिय सन्त्तों– वैष्णवों की निन्दा सहन नहीं कर सकता है। अतः साधु–सन्तों की निन्दा को श्रीहरिनाम अपने प्रति अपराध के रूप में ग्रहण करता है।

जो व्यक्ति श्रीशिव एवं श्रीविष्णु के नाम एवं गुण आदि को भिन्न–भिन्न मानते हैं वे भी निश्चय ही श्रीहरिनाम के प्रति अपराध ही करते हैं।श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) सर्वात्मा हैं। वे श्रीशिव की भी आत्मा हैं श्रीविष्णु की शक्ति से ही श्रीशिव में शक्ति है। विशेषतः श्रीशिव परम वैष्णव, वैष्णवों में अग्रगण्य हैं। किन्तु ऐसा न मानते हुए श्रीशिव को श्रीविष्णु के समान ही स्वतन्त्र या पृथक् ईश्वर मानना भी एक नामापराध ही है।

जाते नामापराधेऽपि प्रमादेन कथञ्चन।
सदासंकीर्त्तयन्नाम तदेकशरणो भवेत्।।

और भी कहा है कि कहीं किसी प्रकार प्रमाद वश कोई नामापराध हो भी जाये तो एक मात्र श्रीनाम की शरण ग्रहण करते हुए सदा नाम संकीर्त्तन करना चाहिए।

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तान्येवार्थकरानि च।।

श्रीसनत्कुमार कहते हैं–कि नामापराध युक्त व्यक्ति के अपराधों, पापों, नामापराध का तो नाम हरण करता ही है, साथ ही निरन्तर नाम संकीर्तन से नाम उस व्यक्ति की अन्य इच्छाओं की भी पूर्ति करता है। उसके अन्य अनेक कामों को भी सम्पन्न करता है।

नामैकं यस्य वाचि स्मरण–
पथगतं श्रोत्र–मूलं गतं वा,
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं
तारयत्येव सत्यम्।
तच्चेद्देह द्रविण जनता लोभ पाखण्डमध्ये–
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्र मेवात्र विप्रः।।

हे विप्र! केवल एक श्रीभगवद् नाम यदि बोला जाय, सुना जाय या स्मरण मात्र ही किया जाय, शुद्ध हो अथवा अशुद्ध हो अबाध हो या बाधा सहित हो, वह व्यक्ति का निश्चित ही उद्धार करता है यह परम सत्य है। किन्तु यदि ये नाम देहारामता, धनप्राप्ति, जनता को लोभित करने के लिये पाखण्ड पूर्वक लिया जाय तो शीघ्र फलदायक नहीं होता अर्थात् शीघ्र उद्धार नहीं करता।

बाधासहित नाम का उदाहरण है– 'राजमहिषी' राज महिषी में 'ज' अक्षर बाधा है। 'ज' नहीं हो तो यह 'राम–हिषी हो जाता है। 'रामहिषी'

कहने से भी 'राम' कहने का फल मिलता है और यह राम नाम जीव का शीघ्र उद्धार करता है। यह शास्त्रीय आदेश है—कोई अलंकारिक कल्पना नहीं है।

महिम्नामपि यन्नामः पारं गन्तुमनीश्वराः।
मनवोऽपि मुनीन्द्राश्च कथं तं क्षुण्णधीर्भजे।।
इत्थं श्रीकृष्ण—पादाब्जे भक्तिः कार्य्या सदाबुधैः।
स च तस्य प्रसादेन महापुण्यात् प्रजायते।।

बृहन्नारदीय पुराण में श्रीनारद जी ने कहा है—महात्मा मनु एवं अन्य मुनियों ने भी जिस श्री भगवन्नाम की महिमा का पार नहीं पाया; तो मैं क्षुद्रबुद्धि नारद किस प्रकार उस श्रीनाम की महिमा का पार पा सकता हूँ।

इस प्रकार समस्त पण्डितगण श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भक्ति करते हैं, किन्तु यह भक्ति भी सहज में प्राप्त नहीं होती। यह भी उन्हीं की कृपा से महापुण्य उत्पन्न होने पर प्राप्त होती है। महापुण्य से तात्पर्य भक्त, भगवान् या भक्ति की कृपा से है। दानादि लौकिक पुण्य के वश में भक्ति नहीं है।

बिना भक्ति के मूर्ख हैं

न ह्यपुण्यवतां लोके मूढानां कुटिलात्मनाम्।
भक्तिर्भवति गोविन्दे स्मरणं कीर्तनं तथा।।

भक्ति के दुर्लभत्व के विषय में स्कन्द पुराण में श्रीपाराशर जी ने कहा है कि—जिन व्यक्तियों में गोविन्द के चरणों में स्मरण कीर्तनादि भक्ति उदित नहीं होती, वह अपुण्यवान हैं, मूढ़ यानि मूर्ख हैं, कुटिल हैं।

दान—व्रत—तपो—होम—जप—स्वाध्याय—संयमैः।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते।।

दशम स्कन्ध में श्रीउद्धवजी ने गोपियों से कहा है— कि दान, व्रत, तप, होम, जप, स्वाध्याय, इन्द्रिय—संयम एवं अन्य विविध श्रेयकारी साधनों द्वारा श्रीकृष्ण की भक्ति साधित होती है। लेकिन यह सब साधन यदि भक्ति को केन्द्रित करके किये जाँय— तभी भक्ति के अन्तर्गत हैं। अन्यथा सीधा—सीधा इनका भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये समस्त नवविधा भक्ति को साधित करने में सहायता करते हैं।

श्रद्धा व कर्म

तावत् कर्म्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा—श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते।।

श्रीमद्भागवत ग्यारहवें स्कन्ध के २० वें अध्याय में कहा गया है कि जब तक कर्म से विरक्ति न हो जाय। अर्थात् कर्म न करने पर तिलमात्र भी आशंका या भय उत्पन्न न हो, तथा साथ ही जब तक मेरी अर्थात् श्रीभगवान् की कथा—प्रसंग आदि में श्रद्धा उत्पन्न न हो तब तक समस्त नित्य व नैमित्तिक कर्म करने चाहिये।

भक्ति आनन्ददायिनी है

स वै पुंसां परोधर्मो यतोभक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यव्यहिता ययात्मा सुप्रसीदति।।

जिस धर्म के अनुसरण या पालन

में इन्द्रियों के अगोचर भगवान् श्रीकृष्ण में अहैतुकी यानि बिना किसी अन्य कारण के एवं व्यवधान रहित अखण्ड प्रेमलक्षणा भक्ति चित्त में उदित हो, और जिसके आचरण से चित्त सम्यक् रूप से प्रसन्नता प्राप्त करे, वही व्यक्तियों का परम धर्म है। अहैतुकी यानि भक्ति के लिये ही भक्ति की जाय। पुत्र, धन, यश या दुःख निवृत्ति के लिये नहीं, ऐसी भक्ति स्वरूपतः आनन्ददायिनी होती है और मनुष्यों के चित्त को स्वाभाविक आनन्द प्रदान करती है।

भक्त्यामेकया ग्राह्यः श्रद्धायात्माप्रियसताम्।
भक्तिःपुनाति मन्निष्ठाश्वपाकानपि सम्भवात्।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध, चौदहवें अध्याय में कहा गया है कि साधु पुरुषों की परमप्रिय आत्मा में केवल श्रद्धा युक्त भक्ति के वशीभूत होता हूँ। मेरे प्रति निष्ठा पूर्वक की गयी भक्ति से चाण्डाल का भी चाण्डालत्व या जाति दोष दूर हो जाता है। अर्थात् निष्ठापूर्वक भक्ति करने वाला चाण्डाल, फिर चाण्डाल नहीं रह जाता।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्ति योगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः।।

श्रीमद्भागवत छठे स्कन्ध, तृतीय अध्याय में यमदूतों को श्रीयमराज ने कहा है कि—हे दूतो! नाम—संकीर्तन आदि रूप जो भगवान् की भक्ति है, वह ही इस लोक में समस्त पुरुषों का परम धर्म कहा गया है।

श्रीहरिभक्ति में समस्त गुण

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतोवहिः।।

श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध के अठारहवें अध्याय में श्रीप्रहलादजी ने कहा है कि भगवान् श्रीहरि के प्रति जिसकी निष्काम भक्ति उदित हो जाती है, देवताओं के समस्त गुण उसमें विराजमान हो जाते हैं। और जो श्रीहरि की भक्ति नहीं करते हैं, उनमें महद्गुण कहाँ से आये वे तो झूठे मनोरथों के लिए विपरीत दिशा में भागता ही भागता रहता है।

सर्वमार्गाधिकत्वम्

नह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेव भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्।।

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में श्रीशुकदेवजी ने कहा है—हे राजन्! भगवान् वासुदेव की भक्ति करने के अतिरिक्त संसारी जनों के कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं हैं। अर्थात् भगवद्भक्ति से जैसा कल्याण संसारीजनों का होता है, वैसा किसी अन्य मार्ग या कार्य से नहीं होता।

सर्वार्थ साधक

यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम्।
तथा समस्त सिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते।।३६३

ब्रहन्नारदीय पुराण में श्रीनारद

जी ने कहा है– कि जिसप्रकार जल समस्त मनुष्यों का जीवन है, उसी प्रकार भक्ति समस्त सिद्धियों की जीवन स्वरूप है। अर्थात् मूल में यदि भगवद् भक्ति है तो समस्त सिद्धियाँ जीवन्त रहेगीं एवं भक्ति रहित होने पर सिद्धियाँ प्रभावहीन हो जाऐंगी।

जीवन्ति जन्तवः सर्वे यथा मातरमाश्रिताः।
यथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वाजीवन्ति सिद्धयः।।३६४

और भी कहा है कि–जैसे माता (जननी) के आश्रय में रहकर ही समस्त जन्तु (जन्म ग्रहण करने वाले) जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्ति के आश्रय में रहकर ही समस्त प्रकार की सिद्धियाँ जीवित रहती हैं। अर्थात् प्रभाव–युक्त रहती हैं।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम्।।३६५

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्ध में कहा है कि–जो निष्काम हैं, जो अनेक कामनाओं से युक्त हैं अथवा जो मुक्ति या मोक्ष की कामना रखते हैं– ऐसे उदार–बुद्धि वाले लोग तीव्र–भक्ति द्वारा परम पुरुष (भगवान् श्रीहरि) का यजन करते हैं–अर्थात् भजन करते हैं–आराधना करते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः।।

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध, सप्तम अध्याय के श्लोक १० में कहा गया है कि भगवान् श्रीहरि के गुण समूह ही ऐसे सर्वचित्ताकर्षक हैं कि (विधि निषेध की परिधि के बाहर) आत्माराम मुनिगण, जिनकी अहंकार, आदि क्रोध रूप समस्त हृदय ग्रंथियाँ खुल चुकी हैं, वे भी श्रीहरि की अहैतुकी (भुक्ति–मुक्ति फल कामना रहित) भक्ति करते हैं। एकमात्र भगवान् श्रीहरि की प्रीति के उद्देश्य से ही उनका श्रवण–कीर्तन–स्मरण–लीलाचिन्तन आदि करते हैं।

श्रीभगवान् की संतुष्टि

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का।
कुब्जायाः किमुनायाः रूपमधिकं किन्तत् सुदाम्नो धनम्।।
वंशः को विदुरस्य यादव पतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।।

पद्यावली में वर्णित है कि–व्याध ने कौन सा सदाचरण किया था? ध्रुव की कौन सी बड़ी आयु थी? गजेन्द्र के पास कौन सी विद्या थी? कुब्जा का कौन सा सुन्दर रूप था? सुदामा ब्राह्मण के पास धन कहाँ था? विदुर का कौन उत्तम कुल था? एवं यादव पति राजा उग्रसेन में क्या पराक्रम था? फिर भी भगवान् श्रीहरि ने इन सभी के प्रति विशेष कृपा की। अतएव भक्तिप्रिय माधव– श्रीहरि केवल मात्र भक्ति से ही संतुष्ट होते हैं। न कि अन्य गुणों से। अर्थात् सदाचरण, आयु, शिक्षा–विद्या, सौन्दर्य, धन, कुल, पराक्रम आदि लौकिक–अलौकिक गुण हों अथवा न हों, लेकिन भगवान् के प्रति की गयी तत्सुखैक–तात्पर्यमयी भक्ति से भगवान् शीघ्र

प्रसन्न होते हैं और भक्त का कल्याण कर उसपर कृपा करते हैं। और इसके विपरीत यदि, आचार, आयु, विद्या–सौन्दर्य–धन–पराक्रम आदि सभी कुछ हो और भगवद्भक्ति न हो तो प्रथम तो यह गुण ही व्यर्थ हैं और श्रीहरि के प्रसन्न होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

श्रीभगवान् भी वशीभूत

न साधयति मां योगो न साख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।

श्रीभगवान् ने श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के १२ वें अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा है कि–हे उद्धव! प्राणायाम आदि अष्टांग योग, सांख्य, अहिंसा आदि, लौकिक धर्मानुष्ठान, स्वाध्याय, (वेदपाठ) तप, त्याग, (संन्यास) आदि से मैं उतना वशीभूत (साधित) नहीं होता हूँ, जितना मेरे प्रति की गयी भक्ति से मैं वशीभूत होता हूँ।

स्वतः परमपुरूषार्थ

सालोक्य–सार्ष्टि–सामीप्य–सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विनामत्सेवनं जनाः।।३६६

भगवद्भक्ति ही परमपुरुषार्थ है– इस तथ्य को सिद्ध करते हुए श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, २६ अध्याय, ११ वें श्लोक में भगवान् कपिलदेव ने कहा है कि–मेरे भक्त मेरी एकान्तिक भक्ति के अतिरिक्त सालोक्य नामक मुक्ति (मेरे साथ मेरे लोक में निवास), सार्ष्टि नामक मुक्ति (मेरे समान ऐश्वर्य) सामीप्य नामक मुक्ति (मेरे समीप में वास) सारूप्य नामक मुक्ति (मेरे समान रूप–रंग), और यहाँ तक कि एकत्व (मेरे में समा जाना) आदि ये मुक्तियाँ देने पर भी स्वीकार नहीं करते हैं। अर्थात् भक्ति के समक्ष ये मुक्तियाँ अति तुच्छ हैं। भगवान् इन्हें देना चाहते हैं, लेकिन भक्त हैं कि उन्हें तो भक्ति ही चाहिए। मुक्ति को तो वह एक कैतव–कपट मानते हैं।

मत्सेवया प्रतीतन्ते सालोक्यादि चतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम्।।

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध, चतुर्थ अध्याय ६७ वें श्लोक में श्रीअम्बरीश प्रति भगवान् ने कहा है–मेरी सेवा या भक्ति से परिपूर्णकाम साधुगण, मेरी भक्ति या सेवा करते–करते सहज में प्राप्त या उपस्थित होने वाली सालोक्यादि चारों प्रकार की मुक्तियों तक की इच्छा नहीं करते हैं या उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं, तब समय के प्रभाव से नष्ट होने वाली अन्य कामनाओं (स्त्री, पुत्र, धन, यश, लाभ स्वर्गादि सुख आदि) की तो बात ही क्या है? अर्थात् भगवद्भक्त केवलमात्र भक्ति की ही कामना करते हैं।

लौकिक–अलौकिक स्वर्ग सुख, मुक्ति, अनेक प्रकार के भोगों को तो उपस्थित होने पर, सहज प्राप्त होने पर भी भक्त कभी नहीं चाहते हैं।

श्रीभगवद्‌भक्ति नित्य है

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो !
क्लिश्यन्ति ये केवल बोध–लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्‌यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।

श्रीमद्‌भागवत दशम स्कन्ध, चौदह अध्याय, ४थे श्लोक में श्रीब्रह्मा जी ने कहा है–हे सर्वव्यापक प्रभो! मानव मात्र के परम श्रेय अर्थात् आपकी भक्ति को छोड़कर जो लोग केवल ज्ञान मार्ग (जीव ही ब्रह्म है) का अवलम्बन लेकर क्लेशमय साधनों द्वारा आपकी आराधना करते हैं, उनको अन्ततः कलेश ही कलेश प्राप्त होता है (आपकी प्राप्ति नहीं होती) ठीक उसी प्रकार जैसे चावल प्राप्ति की इच्छा से चावल की भूसी को कूटने वाले व्यक्ति को अन्त में क्लेश ही प्राप्त होता है, चावल प्राप्त नहीं होते हैं।

विशेष साधन भक्ति–लक्षण

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।

श्रीमद्‌भागवत सप्तम स्कन्ध में श्रीप्रहलाद ने अपने पिता से कहा है– श्रवण (कथा श्रवण), कीर्तन (संकीर्तन–गुण–गान), स्मरण (मानसिक–चिन्तन), पाद सेवन (पूजा), अर्चन (अर्चना), वन्दन (वन्दना–स्तुति), दास्य (सेवा), सख्य (मित्र की भांति विश्वास) एवं आत्मनिवेदन (अपने आपको समर्पण) यह नौ लक्षणों वाली भक्ति मनुष्यों द्वारा श्रीविष्णु को समर्पित करके अनुष्ठित की जाय तो यही सर्वोत्तम अध्ययन है। (जो कि मेरे गुरु मुझे प्रदान नहीं कर रहे हैं)। यहाँ नवविधा भक्ति का वर्णन किया गया है। लेकिन किसी एक प्रकार की भक्ति से भी भगवद्‌प्रेम प्राप्ति की जा सकती है। विशेषतः कलियुग में तो 'कीर्तन' श्रीनाम संकीर्तन सर्वसुलभ एवं परम उपाय है। 'कलौ केशव कीर्तनात्'।

एवं व्रतः स्व–प्रियनाम कीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति
गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः।

श्रीमद्‌भागवत एकादश स्कन्ध में श्रीकवि योगेश्वर के उत्तर में कहा गया है कि–इसप्रकार नियम से जो भक्ति अंगों का अनुसरण करते हैं, अपने प्रिय श्रीहरि के नाम का संकीर्तन करते–करते उनके ह्रदय में अनुराग– प्रेम उदय हो जाता है। इससे उनका ह्रदय द्रवीभूत हो जाता है–यानि उसमें कटुता या कठोरता का नाश हो जाता है। और वे बाह्य–ज्ञान–शून्य होकर प्रेम–पागलों की भांति उच्चस्वर गाते हैं, नाचते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, और पुकारते हैं।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्तया सञ्जातया भक्त्या विभ्रत्युत पुलकां तनुम्।।

इस प्रकार साधन भक्ति करते–करते प्रेमाभक्ति की अवस्था में सर्वपापों का नाश करने वाले श्रीहरि को वे सदैव स्मरण करते हैं और दूसरों को भी स्मरण कराते हुए उनके शरीर में पुलक आदि भाव प्रदर्शित होते हैं।

शरणागति

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीअर्जुन से कहा है–हे अर्जुन! तू समस्त (लौकिक) धर्मों को परित्याग करके एक मात्र मेरी शरण ग्रहण कर। मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कराऊँगा–इस विषय में तू किसी प्रकार का संशय मत कर।

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वदा तस्मै ददाम्येतद्व्रतं मम।।

श्री रामायण में विभीषण–आगमन समय श्रीराम ने कहा है– मैं आपकी शरण हूँ–यह कहकर केवल एक भी बार यदि कोई मुझसे प्रार्थना करता है या मेरी शरण में आता है, तब मैं उसे सदा–सदा के लिए सभी भयों से मुक्त कर देता हूँ–यह मेरा वचन है। मैं इसके लिये वचनबद्ध हूँ।

शरणागति के लक्षण

आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
"रक्षिष्यती" ति विश्वासो गोप्तृत्व–वरणं तथा।।
आत्मनिक्षेप–कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।

श्रीवैष्णवतन्त्र में शरणागति लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं–

१. श्रीभगवान् की अनुकूलता अथवा भक्ति का संकल्प, २. श्री भगवान् की प्रतिकूलता का त्याग, ३. श्रीभगवान् मेरी सदैव रक्षा करेंगे–ऐसा दृढ़ विश्वास, ४. श्रीभगवान् ही मेरे पालक पोषक है। ५. आत्म समर्पण ६. श्रीभगवान् के प्रति दीनता का भाव अथवा अभिमान का त्याग–यह छः शरणा–गति के लक्षण हैं। जिनमें यह लक्षण हैं–वे प्रभु के शरणागत हैं। और शरणागत का प्रभु सदैव मंगल करते हैं–इसके लिये वे वचनबद्ध हैं।

अहो! बकी यं स्तन कालकूटं
जिघांसया पाययदप्य साध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम्।।

श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, द्वितीय अध्याय के २३ वें श्लोक में श्रीविदुर से श्रीउद्धव ने कहा है कि–अहो! कैसा आश्चर्य है कि जिस पूतना ने अपने दोनों स्तनों में विष लगाकर श्रीहरि को मारने की इच्छा से श्रीहरि को अपना स्तन पान कराया, उस पूतना को हमारे श्रीहरि ने श्रीयशोदा की सेविका 'दायी' जैसी गति प्रदान की–अतएव इससे अधिक और कौन दयालु है–जिसकी मैं शरण ग्रहण करूँ।

दायी का कार्य होता है पालन करना–जीवन देना और पूतना ने

प्रयास किया मारने का, जो कि दायी के एकदम विपरीत है, फिर भी केवल स्तन–पान के औपाधिक लक्षण के कारण प्रभु ने उसे दायी जैसी गति प्रदान की।

सदाचार

प्रियञ्च नानृतं ब्रूयान्नान्य–दोषानुदीरयेत्।
नान्याश्रयं तथा वैरं रोचयेत् पुरुषेश्वर!।।

एक सद्गृहस्थ के लिए आचरणीय प्रसंगों को उल्लेख करते हुए विष्णु पुराण अन्तर्गत और्व एवं सगर संवाद में कहते हैं कि हे पुरुषश्रेष्ठ! प्रिय होते हुए भी असत्य वचन न कहे! दूसरे के दोषों को न देखें। दूसरे पर आश्रित न हो और न ही किसी से शत्रुता की इच्छा करे।

असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यञ्च वर्जयेत्।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवाञ्च पुत्रक!।।
केश प्रसाधनादर्श–दर्शनं दन्तधावनम्।
पूर्वाह्न एव कार्याणि देवतानाञ्च तर्पणम्।।

मार्कण्डेय पुराण में मदालसा एवं अलर्क सम्वाद में कहा गया है कि–हे पुत्र! असत् यानि जो सत्विकता रहित है, जो असत्य बोलता है, जो दुर्जन है, उससे कभी बात न करना। झूठ, व कठोर वचन नहीं बोलना, परनिन्दा नहीं करना, असत्शास्त्र का पठन–पाठन नहीं करना, असत् व्यक्ति की सेवा मत करना, असत् व्यक्ति के साथ वाद–विवाद मत करना। साथ ही केश–प्रसाधन, यानि बालों का धोना, सँवारना, आदि दर्पण में मुख देखना अर्थात् तैयार होना, श्रृंगार करना, दन्त धावन, मंजन आदि करना–अर्थात् दैनिक शरीर शुद्धि एवं शरीर–शुद्धि एवं शरीर प्रसाधन एवं देवतादि के लिये तर्पण, यज्ञ, भजन–पूजा आदि पूर्वाह्न में ही कर लेना। एकदिन में आठ प्रहर होते हैं। निशांत, प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायाह्न, प्रदोष, नक्त। जिसमें पूर्वाह्न का जो समय है वह प्रातः ८:२४ से १०:४८।

द्वादश विलास

नमो भगवते तस्मै यस्य प्रियतमा तिथिः।
एकादशी द्वादशी च सर्वाभीष्टप्रदानृणाम्।।

जिनकी प्रियतम अर्थात् अतिप्रिय तिथि एकादशी व द्वादशी मनुष्यों की सर्व–अभीष्ट–कामनाओं को प्रदान करती है, उन भगवान् (श्रीहरि) को मैं नमस्कार करता हूँ। प्रणाम करता हूँ।

द्वादश विलास के मंगलाचरण स्वरूप यह वन्दना की गयी है। इससे यह भी संकेत मिल रहा है कि इस द्वादश विलास में एकादशी व द्वादशी से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की जायेगी।

कृष्णपक्ष–शुक्लपक्ष

इत्थञ्च नित्यं कुर्वाणः कृष्णपूजा–महोत्सवम्।
हरेर्दिने विशेषेण कुर्य्यान्तं पक्षयोर्द्वयोः।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण की पूजा को

महोत्सव पूर्वक नित्य प्रति करना चाहिये। और श्रीहरि के दिन दोनों पक्षों में अर्थात् कृष्णपक्ष हो या शुक्लपक्ष यह पूजादि विशेष रूप में करनी चाहिये।

शास्त्रों में एकादशी व द्वादशी तिथियों को 'हरिवासर' कहा गया है। 'हरिवासर' यानि श्रीहरि का दिन। इस दिन श्रीहरि प्रसन्न रहते हैं और उनकी पूजा, अर्चना, व्रत, भक्ति से वे शीघ्र ही अति प्रसन्न होते हैं। अतः एकादशी व द्वादशी को विशेष रूप से श्रीहरि के निमित्त समर्पित होना चाहिये।

अत्रव्रतस्य नित्यत्वादवश्य तत् समाचरेत्।
सर्वपापापहं सर्वार्थदं श्रीकृष्ण–तोषणम्।।

इस व्रत (एकादशी–द्वादशी) की नित्यता निरूपित होने के कारण इस व्रत को अवश्य करना चाहिये। यह व्रत समस्त पापों को हरण करने वाला, समस्त अर्थों को प्रदान करने वाला एवं विशेषतः श्रीकृष्ण को तुष्ट, संतुष्ट अर्थात् प्रसन्नता प्रदान करने वाला है।

एकादशीव्रत नित्य है

तच्च कृष्ण प्रणिनत्वाद्विधि प्राप्तत्व तस्तथा।
भोजनस्य निषेधाच्चाकरणे प्रत्यवायतः।।

श्री एकादशी व्रत की नित्यता में चार बिन्दु या कारण हैं–

प्रथम–श्रीभगवान् श्रीहरि का सन्तोष विधान, श्रीव्रत के करने से श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं।

दूसरा–शास्त्र में एकादशी व्रत करना चाहिये, ऐसी विधि का उल्लेख है। अतः शास्त्र की इस आज्ञा का पालन।

तीसरा–भोजन न करने का प्रावधान।

चतुर्थ–व्रत न करने पर भजन–भक्ति में विघ्न। परिणामतः अनिष्ट या पाप।

एकादश्यां निराहारो यो भुङ्क्ते द्वादशी दिने।
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे तदव्रतं वैष्णवं महत्।।
एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेतद्धि वैष्णवम्।।

मत्स्य एवं भविष्य पुराण में भगवान् के सन्तोष विधान प्रीति के विषय में रहते हैं–एकादशी के दिन निराहार रहकर जो द्वादशी को भोजन करते हैं, शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष– ऐसा व्रत विष्णु को अत्यधिक प्रिय है। उनकी प्रीति विधान करने वाला है।

अग्निपुराण में कहा है कि एकादशी को भोजन नहीं करना चाहिये। यह व्रत विष्णु को प्रिय है।

एकादशी माहात्म्य

ब्राह्मण–क्षत्रिय–विशां शूद्राणाञ्चैव योषिताम्।
मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विजा।।

बृहन्नारदीय पुराण में एकादशी–माहात्म्य में आरम्भ में लिखा है कि हे ब्राह्मणगण! ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र ही क्यों न हो और नारियों को भी यह विष्णु का परम प्रिय एकादशी व्रत भक्तिपूर्वक

करने से मोक्ष प्रदान करता है।

एकादशी व्रतं नाम सर्वकाम फलप्रदम्।
कर्त्तव्यं सर्वदा विप्रैर्विष्णुप्रीणन–कारणम्।।

और भी कहा है—एकादशी नाम का यह फल सर्व कामनाओं को प्रदान करने वाला है। ब्राह्मणों को यह व्रत विष्णुप्रीति हेतु सर्वदा करना चाहिये। अर्थात् यद्यपि इस व्रत से सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथापि ब्राह्मणगण को श्रीहरि की प्रीति की कामना से इस व्रत को सदैव—सर्वदा करना चाहिये।

शास्त्र आज्ञा

एकादश्यामुपवसेन्न कदाचिदति क्रमेत्।
उपोष्यैकादशी राजन्! यावदायुः प्रवृत्तिभिः।।
द्वादशी न प्रमोक्तव्या यावदायुः प्रवृत्तिभिः।।

अब दूसरे कारण 'विधि' अर्थात् एकादशी—द्वादशी व्रत हेतु शास्त्र आज्ञा का प्रमाण देते हैं।

बृहन्नारदीय पुराण में कण्वऋषि ने कहा है कि एकादशी को सदैव उपवास करना चाहिये। इसका अतिक्रमण या त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

अग्नि पुराण में कहा है—हे राजन्! जब तक जीवन है, तब तक एकादशी व्रत का पालन करना चाहिये।

विष्णु रहस्य में भी कहा है कि—जब तक जीवन है तब तक द्वादशी का त्याग नहीं करना चाहिये।।४१७।।

भोजन-निषेध

एकादश्यां न भुञ्जीत कदाचिदपि मानवः।
एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि।।

अब तीसरे कारण भोजन न करने के बारे में प्रमाण देते हैं—विष्णुस्मृति में लिखा है—मनुष्यों को कभी भी एकादशी के दिन भोजन नहीं करना चाहिये।

श्रृंगिऋषि ने भी कहा है कि रजस्वला होने पर भी नारियों को एकादशी तिथि पर भोजन नहीं करना चाहिये।

व्रत न करने पर

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्या समानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरि वासरे।।
तानि पापान्यवाप्नोति भुञ्जानो हरि वासरे।।

चतुर्थ कारण व्रत न करने वाले अनिष्ट या पापों का वर्णन करते हैं।

नारदीय पुराण में लिखा है कि हरिवासर अर्थात् श्रीहरि का दिन जो एकादशी है उस दिन ब्रह्महत्या सहित अन्य और जितने भी समस्त पाप हैं, वह अन्न में प्रविष्ट हो जाते हैं और एकादशी के दिन अन्न खाने वाला व्यक्ति उन पापों को भी ग्रहण कर लेता है। या यों कहें कि एकादशी के दिन अन्न खाने वाले को ब्रह्महत्या सहित अन्य समस्त पाप लगते हैं।

एकादश्यां मुनिश्रेष्ठ! श्राद्धेभुङ्ते नरोयदि।
प्रतिग्रासं स भुङ्क्ते तु किल्विषं मूत्रविण्मयम्।।

सनत्कुमार संहिता में कहा गया है—हे मुनिश्रेष्ठ! एकादशी के दिन यदि कोई व्यक्ति श्राद्ध—भोजन करता है तब वह प्रत्येक ग्रास में पाप युक्त मूत्र एवं मल ही खाता है। अतएव एकादशी के दिन श्राद्ध नहीं करना चाहिये। एकादशी का श्राद्ध द्वादशी को करना चाहिये।

विधवा या भवेन्नारी भुञ्जीतैकादशी—दिने।
तस्यास्तु सुकृतं नश्येद्भ्रूण हत्या दिने—दिने।।

कात्यायन स्मृति का उपदेश है कि जो विधवा नारी एकादशी के दिन भोजन करती है उसके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं एवं उसे अनेकानेक भ्रूण हत्याओं का पाप लगता है।

एकादशी विना रण्डा यतिश्च सुमहातपाः।
पच्यते ह्यन्धतामिस्रे यावदाहूत संप्लवम्।।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा है—एकादशी व्रत न करने पर विधवा एवं महातपस्वी यतियों को भी प्रलय—काल तक 'अन्धतामिस्र' नामक नरक में पड़े रहना पड़ता है।

कृष्णपक्ष शुक्लपक्ष

एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि।
द्वादश्यां योऽर्च्चयेद्विष्णुं स मुक्तिफलभाग्भवेत्।।

वराहपुराण में कहा गया है कि—कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों की एकादशियों में उपवासी रहकर, द्वादशी को जो विष्णु श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे मोक्ष फल के भागी होते हैं।

नित्यंशक्ति समायुक्तैर्नरैर्विष्णु—परायणैः।
पक्षे पक्षे तु कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्।।
सपुत्रश्च सभार्याश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि।।

नारदस्मृति में लिखा है—नित्यशक्ति से सम्पन्न विष्णुपरायण व्यक्तियों को दोनों पक्षों की एकादशियों के व्रत को अवश्य करना चाहिए।

विष्णुधर्मोत्तर में भी कहा है कि—अपने पुत्र सहित, अपनी पत्नी सहित, अपने प्रिय जनों सहित भक्ति—युक्त होकर दोनों पक्षों की एकादशियों का व्रत करना चाहिए।

संक्रान्ति आदि के दिन भी

संक्रान्तौ रविवारे या यदा चैकादशी भवेत्।
उपोष्या सा महापुण्या सर्वपापहरा तिथिः।।

कात्यायन स्मृति में लिखा है कि संक्रान्ति के दिन अथवा रविवार के दिन यदि एकादशी तिथि आ जाय तो सर्व पापों का हरण करने वाली इस महापुण्यमयी तिथि को अवश्य ही व्रत करना चाहिए।

सूतक-पातक में भी

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते।
सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशी—व्रतम्।।

विष्णुरहस्य में लिखा है कि परम—आपत्ति या संकट आने पर अथवा पर आनन्द या हर्ष के अवसर पर एकादशीतिथि आने पर, अथवा सूतक (घर में जन्म होने के कारण अशौच) या पातक—या मृतक (घर

में मृत्यु होने के कारण अशौच) होने पर भी द्वादशी व्रत का त्याग नहीं करना चाहिए।।४२६।।

उपवास के दिन श्राद्ध न करें

एकादश्यां यदा राम ! श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिने तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्।।

पद्मपुराण पुष्कर खण्ड में लिखा है कि–हे राम ! एकादशी व्रत के दिन श्राद्ध उपस्थित होने पर उस दिन को छोड़कर द्वादशी के दिन श्राद्ध करना चाहिए।

एकादश्यान्तु प्राप्तायां मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
द्वादश्यां तत् प्रदातव्यंनोपवास–दिने क्वचित्।।
गर्हितान्नं न चाश्नन्ति पितरश्च दिवौकसः।।

पद्मपुराण उत्तरखण्ड में लिखा है–माता पिता अथवा पूर्वज के मृत्यु–दिवस पर एकादशी होने पर, द्वादशी में श्राद्ध करना चाहिए। व्रत वाले दिन कभी भी श्राद्ध न करें। क्योंकि पितर एवं देवता (एकादशी के अपमान के कारण) इस निन्दित या दूषित अन्न को ग्रहण नहीं करते हैं।

एकादशी यदा नित्या श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
उपवासं तदा कुर्याद्द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्।।

स्कन्द पुराण में कहा गया है कि–एकादशी व्रत नित्य है और श्राद्ध एक नैमित्तिक कार्य है। अतः जो नित्य है उस एकादशी तिथि के दिन उपवासी रहकर द्वादशी को श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिए।

ये कुर्वन्ति महीपाल ! श्राद्धं त्वेकादशी दिने।
त्र्यस्ते नरकं यान्ति दाता भोक्ता परेतकः।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है–हे राजन् ! एकादशी के दिन श्राद्ध करने से, दाता, भोक्ता एवं प्रेत यानि पितर ये तीनों नरक को प्राप्त होते हैं।

एकादशी कौन कर सकता है

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निर्यतिस्तथा।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।।

अब एकादशी व्रत का अधिकारी कौन है–इस बात पर प्रमाण देते हैं। अग्नि पुराण में लिखा है कि–गृहस्थी, ब्रह्मचारी, अग्निहोत्री (वानप्रस्थ) यति (संन्यासी) इन चारों आश्रमियों को दोनों पक्षों की एकादशियों को भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् व्रत करना चाहिए।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च स्त्रीणाञ्च वरवर्णिनि।
एकादश्युपवासस्तु कर्तव्यो नात्र संशयः।।

पाद्मोत्तर खण्ड में शिव पार्वती संवाद में कहते हैं–हे वरदायिनी ! समस्त वर्ण, समस्त आश्रम, समस्त स्त्रियों को एकादशी के दिन अवश्य ही व्रत–उपवास करना चाहिए इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

अष्टवर्षाधिको मर्त्त्यो अपूर्णाशीतवत्सरः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि।।

कात्यायन स्मृति में कहा है कि आठवर्ष की अवस्था से अधिक एवं अस्सी वर्ष की अवस्था से कम सभी को शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों की एकादशी को उपवास करना चाहिए।

अष्टवर्षाधिको मर्त्त्यो ह्यशीतिनैव पूर्यते।
यो भुङ्क्ते मामके राष्ट्रे विष्णोरहनि पापकृत।।

स मे वध्यश्च निर्वास्यो देशतः कालतश्च मे।
एतस्मात् कारणाद्विप्र एकादश्यामुपोषणम्।
कुर्यान्नरो वा नारी वा पक्षयोरुभयोरपि।।

नारद पुराण में वर्णित है कि राजा रुक्मांगद ने भेरी द्वारा अपने राज्य में घोषणा करवा दी थी कि आठ वर्ष से अस्सी वर्ष तक का कोई भी व्यक्ति जो हरिवासर एकादशी के दिन भोजन करेगा, वह पापी मेरे द्वारा वध्य होगा अथवा मार दिया जायगा या उसको देश से निकाल दिया जायेगा। हे विप्र ! इसलिए नर एवं नारी दोनों को दोनों पक्षों की एकादशियों को उपवास करना चाहिए।

न शैवो न च सौरो वा नाश्रमी तीर्थ सेवकः।
यो भुङ्क्ते वासरे विष्णोः श्वपचादधिको हि सः।।
विप्रियं तेन मे गौरि ! कृतं दुष्टेन पापिना।
मद्भक्ति–बलमाश्रित्य यो वै भुंक्ते हरेर्दिने।।

श्रीस्कन्दपुराण में शिव ने कहा है कि जो एकादशी के दिन भोजन करता है, वह न शैव है, न सौर (सूर्य की उपासना करने वाला) न आश्रमी है (ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास का पालन करने वाला) न ही तीर्थों का सेवक है, वह श्वपच से भी अधिक नीच है। हे गौरि ! मेरी भक्ति के बल का आश्रय लेकर जो हरिवासर के दिन भोजन करता है, वह दुष्ट है, पापी है और मेरा विप्रिय अर्थात् मुझे अप्रिय है। मुझे कभी भी प्रिय नहीं है।

उपरोक्त श्लोक में एकादशी से बचने के बहानों का उल्लेख करते हुए उनका निषेध किया गया है। चाहे शिव का उपासक हो, सूर्य का उपासक हो, ब्रह्मचारी हो, गृहस्थी हो, वानप्रस्थी हो, संन्यासी हो, तीर्थों की यात्रा पर निकला हुआ हो, अथवा शिवजी की भक्ति रूप किसी अनुष्ठान में लगा हुआ क्यों न हो, उसे एकादशी को भोजन करना सदैव निषेध ही है।

वृद्ध-बीमार के लिए एकादशी

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरूर्द्ध्वं जीविनाम्।
एक भुक्तादिकं कार्यमाह बोधायनो मुनिः।।
किञ्च व्याधिभिः परिभूतानां पित्ताधिकशरीरिणाम्।
त्रिंशद्वर्षाधिकानाञ्च नक्तादिपरिकल्पनम्।।

अशक्त व्यक्तियों के प्रति बोधायन स्मृति में बोधायन मुनि का निर्देश है कि–जिनकी आयु अस्सी वर्ष से अधिक हो गयी है, वे एकादशी को एक बार भोजन कर सकते हैं। अथवा, व्याधियों से ग्रसित हों, शरीर में पित्त की मात्रा अधिक हो और उन्हें एकादशी व्रत करते–करते तीस से अधिक वर्ष हो चुके हों उनके लिए एक समय भोजन करने की कल्पना की जा सकती है। यह एक प्रकार की विशेष छूट है। सभी के लिए नियम नहीं है। उपरोक्त कारणों से व्रत में यदि असम्भावना होती है तो एक समय भोजन की छूट दी गयी है। न कि सभी के लिए यह नियम है।

नक्तं हविष्यान्नमनोदनम्बा फलन्तिलाः
क्षीरमथाम्बु चाज्यम्।
यत् पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः
प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च।।

रात्रि में एक बार भोजन करके के विषय में आदेश है कि सेवन करना ही पड़े तो रात्रि में केवल वायु का सेवन करें वायु से काम न चले तो पंचगव्य, अन्यथा घी, अन्यथा जल, अन्यथा दूध, अन्यथा तिल, अन्यथा फल, अन्यथा अन्न के अतिरिक्त कोई द्रव्य, हविष्यान्न का सेवन कर सकते हैं।

ऊपर जिन वस्तुओं की स्वीकृति दी है उनमें क्रमानुसार यदि पहली वस्तु से काम चल जाय तो अगली वस्तु न खाये अर्थात् यदि घी से काम न चले तो जल से चलावे, जल से न चले तो दूध पिये अन्यथा तिल आदि खावे। सारी वस्तुएँ एक साथ भोजन करने का आशय नहीं है।

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मिण काम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।।

श्रीमहाभारत के उद्यमपर्व में वर्णन है कि १. जल, २. फल, ३. मूल, ४. दूध, ५. घृत, ६. ब्राह्मण की कामना, ७. गुरु के वचन एवं ८. ओषधि–इन आठ कारणों से व्रत का नाश नहीं होता।

इसमें अन्य तो स्पष्ट है ही, गुरु आज्ञा से यदि व्रत के नियम में कहीं अन्तराय आये तो व्रत गुरु–आज्ञा के कारण भंग नहीं होगा। 'ब्राह्मण की कामना' का आशय स्पष्ट नहीं हो पा रहा है।

एकादशी माहात्म्य

चिन्तामणि–समा ह्येषा अथवापि निधिः स्मृता।
कल्पपादप–प्रेक्षा वा सर्ववेदोपमाथवा।।

नारदपुराण में श्रीवशिष्ठ जी कहते हैं कि यह एकादशी चिन्तामणि के समान (समस्त चिन्ताओं को हरण करने वाली) किसी निधि के समान (बहुमूल्य) कल्पतरु की भांति (सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली) और सर्व वेदों की उपमा स्वरूप (सर्वोपरि–सर्वपूज्य–महत्वपूर्ण) है।

गोविन्द–स्मरणं नृणामेकादश्यामुपोषणम्।
प्रायश्चित्तमिदं नूनं संसारोत्तार–कारकम्।।

श्रीगोविन्द के स्मरण पूर्वक श्रीएकादशी के व्रत का पालन ही समस्त पापों का प्रायश्चित एवं संसार–सागर से पार होने का उपाय है।

बालत्वे यौवने वापि वृद्धत्वे वा विशाम्बर।
उपोष्यैकादशीं नूनं नैव प्राप्नोति दुर्गतिम्।।

हे वैश्यों में श्रेष्ठ ! बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, किसी भी अवस्था में यदि एकादशी व्रत किया जाय तो व्रती कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।

वरं चाण्डालजातीय एकादश्युपवासकृत्।
न तु विप्रश्चतुर्वेदी यो भुङ्क्ते हरिवासरे।।

एकादशी–व्रत वाले दिन भोजन करने वाले चतुर्वेदी ब्राह्मण से चाण्डाल जाति का वह मनुष्य अधिक

श्रेष्ठ है जो एकादशी व्रत करता है।

ओंकारः सर्ववेदानां यथा चाद्यः प्रपूजितः।
तथा सर्वव्रतानाञ्च द्वादशीव्रतमुत्तमम्।।

विष्णुपुराण में कहा है–जिस प्रकार समस्त वेदों का आदि स्वरूप ॐकार पूजित होता है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में आदि व्रत द्वादशी व्रत उत्तम है।

व्रत का दिन निर्णय

एकादशी च सम्पूर्णा विद्धेति द्विविधा स्मृता।
विद्धा च विविधा तत्र त्याज्या विद्धा तु पूर्वजा।।

एकादशी तिथि सम्पूर्णा एवं विद्धा दो प्रकार की है। फिर विविध प्रकार की विद्धाओं में पूर्व–विद्धा को त्याग देना चाहिये।

सम्पूर्ण के अतिरिक्त एकादशी दशमी विद्धा और द्वादशी विद्धा होती है। इसमें से पूर्व–तिथि–विद्धा अर्थात् दशमी विद्धा तिथि को व्रत नहीं करना चाहिये– यह आशय है।

एकादशीमुपवसेद्द्वादशीमथवा पुनः।
विमिश्रां वापि कुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित्।।

सौर धर्मोत्तर में कहा गया है– एकादशी में उपवास करे अथवा द्वादशी में मिश्रित एकादशी में उपवास करे, किन्तु दशमी से मिश्रित एकादशी में कभी भी उपवास नहीं करना चाहिये।

द्वादशी दशमी–विद्धा धनसन्ताननाशिनी।
ध्वंसिनी सर्वपुण्यानां कृष्णभक्तिप्रणाशिनी।।

दशमी विद्धा द्वादशी धन एवं सन्तान का नाश करने वाली है। यह समस्त पुण्यों को ध्वंस कर देती है एवं श्रीकृष्ण भक्ति का नाश कर देती है।

विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम्।।
पारणं हि त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने ।।
हेतुवादो न कर्त्तव्यो हेतुना पतते नरः।।

श्रीमार्कण्डेय द्वारा इन्द्रद्युम्न से श्रीभगवदाज्ञा पालन हेतु कहा है कि समस्त विवादों का निर्णय यह है कि द्वादशी को व्रत करे एवं त्रयोदशी को उसका पारण करे–यह मेरी आज्ञा है। इस आज्ञा में हेतुवाद अथवा 'क्यों' न करे। किन्तु–परन्तु करने से मनुष्य का नरक में पतन होता है।

वैष्णव लक्षण

परमापदमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी।।
समात्मा सर्वजीवेषु निजाचारादविप्लुतः।
विष्ण्वर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते।।

स्कन्द पुराण में कहा है कि– परम आपत्ति अथवा हर्ष के समय भी जो एकादशी व्रत का त्याग नहीं करता है। जिसने वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की हुयी है। जो सभी जीवों में सम–दृष्टि रखता है, अपने सदाचार का पालन करते हुए समस्त आचार श्रीविष्णु को समर्पित करता है, वही वैष्णव कहलाता है।

येषां न कारणं वेदा न विप्रा न जनार्दनः।
तन्त्राणि धर्म शास्त्राणि तेषां वाक्यं विवर्जयेत्।।

श्री विष्णु रहस्य एवं कूर्म पुराण

में लिखा है कि वेद, ब्राह्मण एवं जनार्दन श्रीहरि को न मानने वाले समस्त तन्त्र शास्त्रों एवं धर्मशास्त्रों के वाक्यों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। अर्थात् नहीं मानना चाहिये।

वेद–विरुद्ध, ब्राह्मण–विरुद्ध, श्रीहरि विरुद्ध जो शास्त्र हैं उनके वच वैष्णवों को ग्राह्य नहीं हैं। उन्हें नहीं मानना चाहिये।

त्रयोदश विलास

वन्दे चैतन्यदेवं तं कृष्णं नित्यनवोत्सवम्।
यस्य प्रसादात् सिद्धयन्ति दीनस्यापि महोत्सवाः।

जिनकी कृपा से नित्य नवीन–नवीन उत्सव सम्पादित होते हैं और दीन जनों के उत्सव भी सिद्धि या सफलता को प्राप्त होते हैं उन श्रीचैतन्यदेव–श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

उपवास लक्षण

असत्यभाषणं द्यूतं दिवास्वापञ्च मैथुनम्।
एकादश्यां न कुर्वीत उपवासपरो नरः।।

श्रीशातातप ने कहा है कि असत्य भाषण अर्थात् झूठ बोलना, जुआ खेलना, दिन में सोना एवं मैथुन, एकादशी के व्रत करने वाले व्यक्ति को यह नहीं करना चाहिये।

क्षमा सत्यं दया मौनं शौचमिन्द्रिय–निग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषस्तेय–वर्ज्जनम्।।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः।।

भविष्य पुराण में कहा गया है कि– १. क्षमा २. सत्य ३. दया ४. मौन ५. शौच यानि शुद्धता ६. इन्द्रियों का दमन ७. देव पूजा ८. अग्निहवन ९. सन्तोष १०. अस्तेय (चोरी न करना) यह दश नियम या धर्म प्रायः समस्त व्रतों में पालन करने चाहिये।

स्त्रीणान्तु प्रेक्षणात् स्पर्शात्ताभिः सङ्कथनादपि।
विपद्यते ब्रह्मचर्यं न दारेष्वृतु संगमात्।।

ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाले दोषों का वर्णन करते हुए कहते हैं–१. नारी को देखना २. नारी को स्पर्श करना ३. नारी से बातचीत करना–यह ब्रह्मचर्य को नष्ट करने के कारण हैं। किन्तु ऋतु–काल में अपनी पत्नी से सहवास करने से दोष का स्पर्श नहीं होता है।

श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते विष्णु–सन्निधौ।
जागरे तत्पदं याति कुल–वृन्द समन्वितः।।

स्कन्द पुराण में श्रीब्रह्मा–नारद संवादान्तर्गत एवं प्रहलाद संहिता में कहा गया है कि–एकादशी व्रत में जागरण के समय श्रीकृष्ण–विग्रह के समक्ष भक्ति सहित जो नर श्रीमद्भागवत का पाठ करता है, वह अपने कुल–परिवार के सहित श्रीहरि के वैकुण्ठ धाम में उनके श्रीचरणों में स्थान प्राप्त करता है।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
कृष्ण जागरणेतानि विलयं यान्ति खण्डशः।।

प्रहलाद संहिता में श्रीप्रहलादजी ने कहा है–ब्रह्महत्या आदि अन्य जो कोई भी पाप हैं, एकादशी के

रात्रि जागरण करने से वह खण्ड–खण्ड होकर नाश हो जाते हैं।

उन्मीलनी वञ्जुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धनी।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीसूतशौनक संवाद में वर्णन है कि– १. उन्मीलनी २. व्यञ्जुली ३. त्रिस्पृशा ४. पक्षवर्धिनी ५. जया ६. विजया ७. जयन्ती ८. पापनाशिनी नामक आठ महाद्वादशियों को अवश्य ही व्रत का पालन करना चाहिये।

चतुर्दश विलास

अगत्येकगतिं नत्वा हीनार्थाधिक साधकम्।
चैतन्यदेवं लिख्यन्ते मास–पूजा महोत्सवाः।।

जन्म से कर्महीन अत्यन्त नीच पुरुषों के भी धर्म आदि के साधक, अगति के गति स्वरूप श्रीचैतन्यदेव को प्रणाम करके मास–पूजादि को लिखता हूँ।

माघ माहात्म्य

माघस्नायी नरो यः स्याद्दुर्गतिं नैव पश्यति।
तन्नास्ति मानुषे लोके किल्विषं यन्न शोधयेत्।।

कात्यायन संहिता में लिखा है कि जो मनुष्य माघ मास में (पवित्र नदियों में सूर्योदय से पूर्व) स्नान करता है वह कभी भी किसी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। साथ ही इस लोक में ऐसा कोई पाप ही नहीं है जिसका शोधन माघ–मास स्नान से सम्भव न हो।

माघस्य शुक्ल–पञ्चम्यां महापूजां समाचरेत्।
नवैः प्रवालैः कुसुमैरनुलेपैर्विशेषतः।।
नीराजनोत्सवं कृत्वा भक्त्या सम्मान्य वैष्णवान्।
वसन्त रागं जनयन् गीतनृत्यादि कारयेत्।।

माघ मास की शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि (वसन्त पंचमी) को महापूजा का आयोजन करना चाहिये। नवीन–नवीन पत्ते, नवीन–फूल और (चन्दनादि) अनुलेपन द्वारा श्रीहरि की सेवा–पूजा करनी चाहिये। भगवान् की विशेष आरती करते हुए भक्त एवं सम्मानित वैष्णव जनों को सम्मानित करते हुये वसन्त राग के गान एवं नृत्य का आयोजन करना चाहिये।

शिव रात्रौ च कर्त्तव्यं नियमेन त्रयं बुधैः।
उपवासो महादेव–पूजा जागरणं निशि।।

शिवरात्रि के दिन बुद्धिमानों को उपवास, महादेव श्री शिव की पूजा और रात्रि–जागरण नियमपूर्वक करना चाहिये।

मुमुक्षवोऽपि हि सदा श्रीरामनवमी व्रतम्।
न त्यजन्ति सुर श्रेष्ठो देवेन्द्रोऽपि विशेषतः।।

अगस्त्य संहिता में वर्णित है कि– मुमुक्षु यानि मुक्ति कामी ज्ञानमार्गी एवं विशेषतः इन्द्र भी श्रीरामनवमी व्रत का त्याग नहीं करते हैं। अतः समस्त वैष्णवों को श्रीरामनवमी का व्रत अवश्य रखना चाहिये।

एकामपिनरो भक्त्या श्रीरामनवमीं मुने।
उपोष्य कृतकृत्यः सन् सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

एक मात्र श्री रामनवमी का ही भक्तिपूर्वक व्रत रखने वाला व्यक्ति अपने जीवन को कृतकृत्य कर लेता है और सर्वपापों से मुक्त हो जाता है।

चैत्रे सितैकादश्याञ्च दक्षिणाभिमुखं प्रभुम्।
दोलया दोलनं कुर्याद्गीत–नृत्यादिनोत्सवम्।।

चैत्र मास की एकादशी तिथि को प्रभु (श्रीविग्रह) को दक्षिण की ओर मुख करके झूले में झुलाना चाहिये और गीत–नृत्य–(संकीर्तन एवं झूले के पद आदि को गाते हुए) महोत्सव मनाना चाहिये।

दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यद्भक्त्या मासि माधवे।
तदक्षयं भवेद्भूप ! पुण्यं माधववल्लभे।।

श्री नारद एवं श्री अम्बरीश संवादान्तर्गत कहा गया है कि श्री माधव के प्रिय वैशाख मास में भक्तिपूर्वक दान, जप, होम या यज्ञ, पवित्र नदियों में स्नान आदि जो भी धर्म या भक्ति अनुष्ठान किये जाते हैं, वे समस्त अक्षय पुण्य प्रदान करने वाले होते हैं।

वैशाख मास की दुर्लभता

दुर्लभं भारते वर्षे जन्म तत्र मनुष्यता।
मानुष्ये दुर्लभं लोके स्व स्व धर्मप्रवर्त्तनम्।।
ततोऽपि भक्तिर्भूपाल ! वासुदेवेऽति दुर्लभा।
तत्रापि दुर्लभो मासो माधवो माधव–प्रियः।।

श्री नारद जी ने कहा–हे राजन् ! एक तो भारतवर्ष में जन्म मिलना ही दुर्लभ है, और इससे भी अधिक दुर्लभ है मनुष्य का जन्म मिलना। मनुष्य जन्म मिलने पर भी अति दुर्लभ है अपने–अपने वर्णाश्रम धर्मों का पालन करना। और इससे भी अधिक दुर्लभ है श्री हरि की भक्ति करना और उस सबसे अधिक दुर्लभ है श्री माधव को प्रिय माधव मास यानि वैशाख मास।

त्रेतायुगं तृतीयायां शुक्लायां मासि माधवे।
प्रवृतञ्च त्रयीधर्माः प्रवृत्तास्ते प्रवर्त्तिताः।।
अक्षया सोच्यते लोके तृतीया हरि वल्लभा।
स्नाने दानेऽर्चने श्राद्धे जपे पूर्वज तर्पणे।।

पद्मपुराण में वराह एवं पृथ्वी संवाद में वर्णित है–वैशाख मास की शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि को सत्य युग का प्रारंभ हुआ था। इसी दिन ही वेद त्रय प्रतिपादित धर्म का प्रवर्तन या प्रारंभ हुआ था। इस अक्षय तृतीया को स्नान, दान, पूजा, श्राद्ध, जप एवं पूर्वजों का जो तर्पण है वह अक्षय हो जाता है उसका कभी क्षय नहीं होता है और यह तृतीया तिथि श्री हरि को अतीव प्रिय है।

वैशाखशुक्ल पक्षस्य चतुर्दश्यां समाचरेत्।
मज्जन्म सम्भवं पुण्यं व्रतं पाप प्रणाशनम्।।

श्री बृहन्नारसिंह पुराण में कहा है कि वैशाख शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को मेरे जन्म (श्री नृसिंह–अवतार) के कारण पुण्यप्रद व्रत का पालन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

"श्रीनृसिंह ! महाभीम ! दयां कुरु ममोपरि।
अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय।।"इति।।

व्रत का नियम लेते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए–हे श्री

नृसिंह ! हे महाभीम ! आज मैं आपके व्रत का अनुष्ठान करूँगा। आप मेरे ऊपर दया करें, जिससे यह निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय।

पञ्चदश-विलास

यस्माज्जल विहारादि–महोत्सव परम्परा।
सिद्धयेद्दीनतरस्यापि तं चैतन्यमाश्रये।।

जिनकी कृपा से अति दीन जनों द्वारा भी प्रभु के जलविहारादि महोत्सव परम्परानुसार सम्पन्न होते हैं, मैं उन श्रीचैतन्य देव की शरण ग्रहण करता हूँ।

आरभ्य राकां वैशाखीं ज्येष्ठीं यावन्महोत्सवम्।
कुर्यात् सम्पूजयेन्नित्यं कृष्णं जलविहारिणम्।।

वैशाखी पूर्णिमा से आरंभ करके ज्येष्ठ पूर्णिमा तक प्रतिदिन जल–विहारी भगवान् श्रीकृष्ण की महोत्सव सहित पूजा करनी चाहिये।

सम्वत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्ति हि।
तासां फलमवाप्नोति पुत्र! मे नात्र संशयः।।

पद्मपुराण में श्रीभीमसेन जी से श्रीव्यास जी ने कहा है– कि हे पुत्र ! सम्पूर्ण संवत्सर यानि पूरे वर्ष में जितनी एकादशियाँ होती हैं उन सबका फल (एक मात्र निर्जला एकादशी के व्रत रखने से) प्राप्त हो जाता है– इसमें कोई भी संशय नहीं है।

श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा।
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके चामिषं त्यजेत्।।

चातुर्मास्य व्रत विधि का वर्णन करते हुए स्कन्द पुराण के जागरण खण्ड में कहा है कि श्रावण मास में साग, भाद्र में दही, आश्विन में दूध और कार्तिक मास में मांस नहीं खाना चाहिये।

श्रावणस्य सितेपक्षे द्वादश्यां वैष्णवैर्मुदा।
कर्त्तव्यः कृष्णदेवस्य पवित्रारोपणोत्सवः।।

श्रावण मास की शुक्ला द्वादशी को समस्त वैष्णवों द्वारा प्रसन्नता सहित श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह को पवित्रा (यज्ञोपवीत) धारण कराना चाहिये। पवित्रा का एक अर्थ तुलसी भी है। अतः तुलसी–पौधा लगाना भी प्रशस्त है।

"ओं साम्वत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः।
विष्णुलोकात् पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते"।।

यज्ञोपवीत धारण कराने का मन्त्र इस प्रकार है– हे पवित्र ! सम्वत्सर–याग को पवित्र करने हेतु आप इस समय श्रीविष्णु लोक से यहाँ आगमन कीजिए। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी

सर्वैरवश्यं कर्त्तव्यं जन्माष्टमी व्रतं नरैः।
नित्यत्वात् पापहारित्वात् सर्वार्थ प्रापणादपि।।

सभी मनुष्यों को श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी का व्रत अवश्य ही करना चाहिये। यह व्रत नित्य है और इसमें समस्त पापों को हरने की शक्ति है और इस व्रत के करने से सब कामनाओं की पूर्ति होती है।

कृष्णजन्माष्टमीं त्यक्त्वा योऽन्य–व्रतमुपासते।
नाप्नोतिसुकृतं किञ्चिद्दृष्टश्रुतमथापि वा।।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के व्रत को न करते हुए जो व्यक्ति अन्य व्रतों को करते हैं उन्हें उन अन्य व्रतों का जो फल सुना जाता है अथवा देखा जाता है–वह प्राप्त नहीं होता है।

तुष्ट्यर्थं देवकी–सूनोर्जयन्तीसम्भवं व्रतम्।
कर्त्तव्यं वित्तमानेन भक्त्या भक्तजनैरपि।।

धनवान् व्यक्तियों को भक्तिपूर्वक भक्तजनों सहित देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता हेतु जन्माष्टमी व्रत करना चाहिये।

एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन।
सप्तजन्म कृतात् पापान्मुच्यते नाम संशयः।।
पुत्र सन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं लभेत्।
सत्य धर्मरतोभूत्वा मृतो वैकुण्ठमाप्नुयात्।।

भविष्योत्तर पुराण में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में कहा है कि–हे कुरुनन्दन! केवल मात्र श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का उपवास करने पर सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं–इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस श्रीजन्माष्टमी के व्रत के करने से पुत्र–सन्तान, आरोग्य और अतुल–सौभाग्य प्राप्त होता है। साथ ही सत्य एवं धर्म–परायण होकर व्यक्ति मृत्यु पश्चात् वैकुण्ठ को प्राप्त करता है।

रोहिणी च यदा कृष्णपक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम्।
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः।
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्द्धकेऽपि यत्।।
सप्तजन्म कृतं पापं स्वल्पम्वा यदि वा बहु।
तत् क्षालयति गोविन्दं तस्यामभ्यर्च्य भक्तितः।।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कहा है कि–कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जब रोहिणी नक्षत्र होता है, तब उसे 'जयन्ती' कहा जाता है। यह तिथि समस्त पापों का हरण करने वाली है। बाल्यावस्था या किशोर अथवा युवावस्था में अथवा वृद्धावस्था में जो जो पाप सात जन्मों में कम या अधिक मात्रा में किये जाते हैं, इस दिन श्री गोविन्द की भक्ति युक्त होकर पूजा करने पर इन सबको श्रीगोविन्द नाश कर देते हैं।

या तु कृष्णाष्टमीनाम–विश्रुता वैष्णवी तिथिः।
तस्याः प्रभावमाश्रित्य पूताः सर्व्वे कलौ जनाः।।

ब्रह्मपुराण पूर्वखण्ड में श्री जन्माष्टमी माहात्म्य में श्रीसूत जी ने कहा है– जो वैष्णवी तिथि श्रीकृष्णाष्टमी नाम से विख्यात है, उसके प्रभाव का आश्रय करने से कलियुग के समस्त जन पवित्रता को प्राप्त करते हैं।

कृष्णजन्माष्टमी लोके प्रसिद्धा पापनाशिनी।
क्रतुकोटि–समा त्वेषा तीर्थायुतशतैः समा।।
कपिला–गो–सहस्रन्तु यो ददाति दिने दिने।
तत् फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे।।

स्कन्द पुराण में श्रीब्रह्मा नारद संवाद में कहा गया है कि लोक में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी नाम से जो पापनाशिनी तिथि प्रसिद्ध है वह एक करोड़ यज्ञों के एवं सौ हजार तीर्थों के समान है। जो व्यक्ति प्रतिदिन

सहस्र कपिला गौ दान करने का जो फल प्राप्त करते हैं। वे इस जयंती तिथि को उपवास करके उसके समान फल प्राप्त कर लेते हैं।

जन्माष्टमी–व्रतं ये वै प्रकुर्व्वन्ति नरोत्तमाः।
कारयन्ति च विप्रेन्द्र ! लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा।।

हे विप्रेन्द्र ! जो समस्त उत्तम व्यक्ति जन्माष्टमी व्रत करते हैं अथवा दूसरे को कराते हैं, लक्ष्मी स्थिरभाव से सदैव उनके पास निवास करती है।

न वेदैर्न पुराणैश्च मया दृष्टं महामुने !
यत् समञ्चाधिकं वापि कृष्ण–जन्माष्टमीव्रतात्।।

हे महामुने ! श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत करने से जो फल प्राप्त होता है, उसके समान या उससे अधिक फल वेद या पुराण में मैंने कभी नहीं देखा–सुना।

नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्माष्टम्यां द्विजोत्तम !
विवर्णवदनो भूत्वा तल्लिपिं मार्ज्जयेद्यमः।।

हे द्विजोत्तम! जो मनुष्य जन्माष्टमी पर नियम धारण करता है–उसे देखकर यमराज मलिनवदन से अर्थात् निराश होकर उस व्यक्ति के पापों के हिसाब–किताब को नष्ट कर देता है। अर्थात् उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं जिससे उसे नरक में नहीं जाना पड़ता।

व्रतेनाराध्य तं देवं देवकीसहितं हरिम्।
त्यक्त्वा यम–पथं घोरं याति विष्णोः परं पदम्।।

और भी कहा है कि– जो व्यक्ति व्रत द्वारा देवकी सहित देवदेव श्रीहरि की आराधना करता है, वह भयानक यमपथ को त्यागकर, भगवान् विष्णु के परम पद की ओर जाता है।

स्मरणं वासुदेवस्य मृत्यु–काले भवेन्मुने !
सियन्ति सर्व्वकार्य्याणि कृते जन्माष्टमी–व्रते।।
ममाज्ञया कुरुध्वं तज्जयन्तीं मुक्तये तथा।।

हे मुने ! जन्माष्टमी व्रत करने वाले व्यक्ति द्वारा मृत्यु समय में वासुदेव भगवान् का स्मरण करने से समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं। हे मुने ! यदि मुक्ति की कामना है तो भी मेरी आज्ञा से तुम श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी का व्रत करो।

इत्येतत् कथितमशेषशास्त्रगुह्यं
श्रीकृष्ण–व्रतमहिमानुवर्णनं यत्।
श्रुत्वैतत् सकृदपि पातकैर्विमुक्तो
देहान्ते व्रजति नरो मुरारि–लोकम्।।

ब्रह्माण्ड पुराण में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत महिमा वर्णन के अन्त में श्री सूत जी ने कहा है–श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत की महिमा जो समस्त शास्त्रों में गोपनीय है, मनुष्य एक बार उसका श्रवण करने मात्र से–अनेक पापों से मुक्त होकर शरीर के शान्त होने पर विष्णुलोक को गमन करता है।

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणी–ऋक्षसंयुता।
भवेत् प्रौष्ठपदे मासि "जयन्ती" नाम सा स्मृता।।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी रोहिणी नक्षत्र से युक्त होने पर ही इस तिथि को 'जयन्ती' कहते हैं।

पीताम्बरधरं नित्यं वनमाला विभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगत् सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम्।।

देवकी गर्भ सम्भूतं दैत्य सैन्य विनाशनम्।
गृणार्घ्यमिदं देव ! गोविन्दाय नमोनमः।।
इति अर्घ्यमन्त्रः

"योगेश्वराय योगसम्भवाय योग–
पतये गोविन्दाय नमो नमः।।
इति स्नान मन्त्र

आप पीताम्बर को धारण करने वाले हैं, आप नित्य हैं, आप वनमाला से विभूषित हैं, श्रीवत्स को धारण करने वाले हैं, जगत् के सेतु हैं अर्थात् जगत् से पार करने वाले हैं, आप श्री यानि लक्ष्मी के पति हैं। आप श्री को धारण करने वाले हैं, आप श्रीहरि हैं, आप श्रीदेवकी के गर्भ से प्रकट हुए हैं, आप दैत्यों की सेना का नाश करने वाले हैं। हे श्रीगोविन्द मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार कीजिये। आप योगियों के ईश्वर हैं। योग द्वारा सम्भव हैं। योग के पति हैं। हे गोविन्द आपको मेरे अनेकानेक नमस्कार हैं। यह मन्त्र बोलकर स्नान करायें।

"योगेश्वराय देवाय देवकी नन्दनाय च।
योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो नमः।।

आप योगियों के ईश्वर हैं। आप ही देवकी को आनन्द देने वाले हैं। आप योग से प्रकट होने वाले हैं। आप नित्य हैं। हे श्रीगोविन्द आपकी जय हो ! जय हो !!

"वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वामनाय नमोऽस्तुते।।"
वामनाय अर्घ्यं नमः।। ४८२।।

हे प्रभो ! आपने वामन रूप धारण करके त्रिभुवन को लांघ लिया, आप मेरे द्वारा प्रदान किया यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये। वामनरूप में आपको मैं प्रणाम करता हूँ। 'वामनाय नमः' बोलकर अर्घ्य देना चाहिये।

रामराज्यं राम–राज्यं राम–राज्यं इति ब्रुवन्।
आनीय स्थापयेद्देव निज सिंहासने सुखम्।।
ततो नीराज्य देवेशं प्रणमेद्दण्डवद्भुवि।
महाप्रसाद वस्त्रादि धारयेद्वैष्णवैः सह।।

रामराज्य, रामराज्य, रामराज्य– ऐसा बोलते हुए श्रीरामजी के श्रीविग्रह को निज–सिंहासन पर सुख से स्थापित करना चाहिये। श्रीविग्रह की आरति करके दण्डवत् प्रणाम करके वैष्णवों के साथ महाप्रसाद एवं (नये) वस्त्रादि धारण करके (विजया दशमी) तिथि की आराधना करनी चाहिये।

षोड़श-विलास

दामोदरं प्रपद्येऽहं श्रीराधारमणं प्रभुम्।
प्रभावादयस्य तत् प्रेष्ठः कार्तिकः सेवितो भवेत्।।

श्रीराधारमण दामोदर प्रभु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जिनके प्रभाव से उनके प्रिय कार्तिक–मास की सेवा की जावेगी।

वेदैरधीतैः किन्तस्य पुराण–पठनैश्च किम्।
कृतं यदि न विप्रेन्द्र कार्त्तिके वैष्णवं व्रतम्।।
जन्म प्रभृति यत् पुण्यं विधिवत् समुपार्जितम्।
भस्मीभवति तत् सर्वमकृत्वा कार्त्तिक व्रतम्।।

विप्रेन्द्र ! वेदों के अध्ययन एवं पुराणों के पढ़ने से क्या होता है,

यदि कार्तिक मास के वैष्णव–व्रत का अनुष्ठान न किया गया हो। अनेकों जन्मों में नियम पालन पूर्वक जो पुण्य अर्जित किया गया है वह कार्तिक व्रत के न करने पर भस्मीभूत हो जाता है।

कार्त्तिकं खलु वै मासं सर्वमासेषु चोत्तमम्।
पुण्यानां परमं पुण्यं पावनानाञ्च पावनम्।।

स्कन्द पुराण में वर्णित है कि– कार्तिक मास, समस्त मासों में उत्तम है और समस्त पुण्यों में परम पुण्य को प्रदान करने वाला है और पावनों में सर्वाधिक पावन मास है यह।

व्रतानामिह सर्वेषामेकजन्मानुगं फलम्।
कार्त्तिके तु व्रतस्योक्तं फलं जन्म शतानुगम्।।

और भी कहा है कि अन्य समस्त व्रतों का फल केवल एक जन्म तक रहता है, किन्तु कार्तिक मास व्रत का फल सौ जन्मों प्राप्त होता रहता है।

प्रदक्षिणञ्च यः कुर्यात् कार्त्तिके विष्णु सद्मनि।
पदेपदेऽश्वमेधस्य फलभागी भवेन्नरः।।

जो व्यक्ति कार्तिक मास में विष्णु के श्रीविग्रह की ४ परिक्रमा करता है उसे प्रत्येक पद–पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

नियमेन कथां विष्णोर्ये श्रृण्वन्ति च भाविताः।
श्लोकार्द्धं श्लोकपादम्वा कार्त्तिके गो–शतं फलम्।

नियमपूर्वक श्रीविष्णु अथवा श्रीहरि की कथा को जो भावपूर्वक सुनता है एवं आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी जो पाठ करता है उसे सौ गायें दान करने का फल प्राप्त होता है।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने!
अष्टादश पुराणानां कार्त्तिके फलमाप्नुयात्।।

हे मुने! कार्तिक मास में प्रतिदिन नियमपूर्वक जो मनुष्य श्रीमद्भागवत श्लोक पाठ करता है उसे अठारह पुराणों के श्रवण का फल प्राप्त होता है।

कार्त्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम्।
मुक्तिं प्राप्स्यामहे नूनं प्रसादाच्चक्रपाणिनः।।

कार्तिक मास में दीपदान द्वारा जो भगवान् श्रीकेशव को प्रसन्न करता है उसे चक्रपाणि अर्थात् हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करने वाले भगवान् श्रीहरि की कृपा से मुक्ति प्राप्त होती है।

अन्याः पूर्य्यस्ततसमाना मुनयो! मथुरां विना।
दामोदरत्वं हि हरेस्तत्रैवासीद्यतः किल।।

पद्मपुराण में कार्तिक पूजा के अनेकों फल प्रदान करने वाली अन्य समस्त पुरियों के बारे में कहा है कि–अन्य समस्त पुरियाँ एक सा फल प्रदान करती हैं, लेकिन मथुरा में इनका विशेष फल ही प्राप्त होता है क्यों केवलमात्र मथुरा पुरी ही ऐसी है जहाँ भगवान् श्रीहरि का दामोदर स्वरूप प्रकट हुआ है।

सा त्वञ्जसा हरेर्भक्तिर्लभ्यते कार्त्तिके नरैः।
मथुरायां सकृदपि श्रीदामोदर–पूजनात्।।

मथुरा में कार्तिक मास में एक बार भी जो श्रीदामोदर भगवान् की पूजा–अर्चना (परिक्रमा) करते हैं। उन्हें सुख–दायी श्रीं हरि की भक्ति

प्राप्त हो जाती है।

कार्तिक मास माहात्म्य

कार्त्तिके तु विशेषेण राजमाषांश्च भक्षयन्।
निष्पावान् मुनिशार्दूल यावदाहूतनारकी।।
कलिंगानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च।
न त्यजेत् कार्त्तिके मासि यावदाहूत नारकी।।

श्रीब्रह्मा–नारद संवादान्तर्गत वर्णन है कि–कार्तिक मास में विशेष रूप से जो राजमा एवं सेम खाता है, हे मुनि शार्दूल ! उसे प्रलय पर्यन्त नरक में वास करना पड़ता है। साथ ही कलिंग (तरबूज) पटोल (परवल) वृतांक (बैंगन) एवं मिली जुली सब्जियाँ (मिक्स वैज) या गड्ड की सब्जी का त्याग नहीं करता, वह प्रलय पर्यन्त नरक में वास करता है।

ततः प्रियतमाविष्णोराधिका गोपिकासु च।
कार्त्तिके पूजनीया च श्रीदामोदर सन्निधौ।।

पद्मपुराण में कहा है कि–समस्त गोपिकाओं में श्रीराधारानी ही श्रीविष्णु की प्रियतम हैं अतः श्रीदामोदर के साथ कार्तिक में श्रीराधा जी की पूजा करनी चाहिये। अर्थात् कार्तिक मास में श्रीराधादामोदर जी की पूजा का विशेष माहात्म्य है।

"नमामीश्वरं सच्चिदानन्द रूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम्।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यन्ततोद्रुत्य गोप्या।।

जिनके दोनों कानों में सुन्दर कुण्डल झलकते हैं। जो सदा गोकुल (यानि गायों के झुण्ड के मध्य) विराजमान रहते हैं, जो छींके पर रक्खे माखन को चुराकर यशोदा के भय से ऊखल पर छलांग मारकर तीव्रगति से भागे थे, और श्रीयशोदा ने भागकर पीछे से जिनको पकड़ लिया था, उन सच्चिदानंद रूपी ईश्वर (श्रीकृष्ण) को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्री दामोदराष्टक अनेक ग्रन्थों में मुद्रित है, उसका यह प्रथम श्लोक है कार्तिक मास में प्रतिदिन इसका पाठ करना चाहिये। (भक्तभाव संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध है)

प्रदोष–समये विप्राः ! कर्त्तव्या दीपमालिकाः।
दीपदानात्ततः पश्चाल्लक्ष्मीं सुतां प्रबोधयेत्।।
त्वं ज्योतिः श्री रविश्चन्द्रो विद्युत् सौवर्णतारकाः।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीप ज्योतिः स्थिते नमः।।

हे विप्रगण ! अमावस्या को प्रदोष के समय दीपकों की माला सजानी चाहिये। दीप–दान के पश्चात् सोयी हुयी लक्ष्मी को उठाना या जगाना चाहिये और इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये–आप ही ज्योति हैं, आप ही श्री हैं, आप ही सूर्य हैं, आप ही चन्द्र हैं, आप ही विद्युत हैं, आप ही स्वर्ण हैं, आप ही स्वर्णमय तारागण हैं, समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों की आप ही ज्योति हैं। इन दीपों की ज्योति में स्थित आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

गोवर्द्धन ! धराधार ! गोकुल त्राण कारक !
विष्णु–बाहुकृतोच्छायो गवां कोटि–प्रदोभव।।

हे पृथ्वी को धारण करने वाले !

हे गोकुल के कष्टों का निवारण करने वाले! भगवान् श्रीहरि की बाहुओं पर विराजमान होकर छाया प्रदान करने वाले हे! गोवर्धन! कोटि–गायों को प्रदान करने की कृपा करो।

तस्यां निज ग्रहे विप्र न भोक्तव्यं ततो बुधैः।
स्नेहेन भगिनि–हस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्।।

हे विप्र! यम द्वितीया अथवा भैयादौज के दिन बुद्धिमान गण अपने घर में भोजन नहीं करते हैं। स्नेह द्वारा बहिन के हाथ का बनाया हुआ पुष्टि वर्धक भोजन ही ग्रहण करना चाहिये।

रथारूढ़े महाविष्णौ ये कुर्वन्ति जय–स्वनम्।
पूजाञ्चाखिल पापेभ्यो मुक्ता यान्ति हरेः पदम्।।

महाविष्णु श्रीहरि को रथ पर विराजमान करके जो जय–जय ध्वनि करते हुए उनकी पूजा अर्चना करते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के धाम को प्राप्त करते हैं।

सप्तदश विलास

कस्माच्चिदाश्रयाद्यस्य प्रोद्यद्भक्ति–विलासतः।
दीनोऽपि रञ्जयेद्विश्व तं श्रीचैतन्यमाश्रये।।

जिनकी (भक्ति के) किसी भी अंग का आश्रय लेने पर उदित हुई सम्यक् भक्ति के प्रभाव से दीन व्यक्ति भी समस्त विश्व को आनन्द प्रदान कर सकता है, उन श्रीचैतन्य देव का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

संसारे दुःखभूयिष्ठे य इच्छेत् सुखमात्मनः।
पञ्चांगोपासनेनैव रामं भजतु भक्तितः।।
पञ्चांगोपासनं भक्तै पुरश्चरणमुच्यते।
एतद्धि विदुषां श्रेष्ठ ! संसारच्छेदकारणम्।।

पंचांग उपासना या पुरश्चरण

अगस्त्य संहिता में लिखा है कि–संसार के दुःखों से दुखित होकर जो अपने सुख की इच्छा करते हैं, वे पंचांग उपासना द्वारा भक्तिपूर्वक श्रीराम का भजन करते हैं। भक्तगणों द्वारा की गयी पंचांग उपासना को ही पुरश्चरण कहते हैं। हे विद्वद् श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! यह पुरश्चरण ही संसार के दुःखों को छेदन करने का एक कारण है, मार्ग है, उपाय है। (१) प्रातः, दोपहर, सन्ध्या इन तीनों समय नित्य पूजा–अर्चन (२) नित्य भगवन्नाम जप (३) नित्य तर्पण अर्थात् जल द्वारा ऋषि, पितृ, देवताओं आदि को तृप्त करना (४) नित्य होम–अर्थात् हवन एवं (५) नित्य ब्राह्मण–वैष्णव भोजन। सामान्य व्यक्ति यदि थोड़ी सी चेष्टा करे तो प्रतीक रूप में प्रतिदिन यह पुरश्चरण कर सकता है। १. प्रतिदिन तीन समय प्रभु की आरती करे, भोग लगावे। २. माला द्वारा जप करे ३. तुलसी को जल देवे ४. ठाकुर का अमनिया बनाते समय प्रथम ग्रास अग्नि को समर्पित करे। ५. प्रतिदिन एक वैष्णव को माधुकरी प्रदान करें।

जप एवं माला

अनामा–मध्यमाक्रम्य जपं कुर्यात्तु मानसम्।
तर्जनींतु समाक्रम्य जपं नैव तु कारयेत्।।
एकैकमणिमङ्गुष्ठेनाकर्षन् प्रजपेन्मनुम्।
मेरौ तु लंघिते देवि न मन्यफलभाग्भवेत्।।

शिवपुराण में लिखा है कि–माला जप करते समय यदि मानसिक जप कर रहे हैं तो अनामिका के मध्य में माला को रखना चाहिये। तर्जनी उंगली से माला जप नहीं करना चाहिये (इसीलिये यह उंगली झोली के बाहर रहती है) माला की एक मणि को अंगूठे से आगे खींचकर जप करना चाहिये। मेरु को कभी भी लाँघना नहीं चाहिये। मेरु लांघने से जप का फल प्राप्त नहीं होता है।

तर्जन्या न स्पृशेत् सूत्रं कम्पयेन्न विधूनयेत्।
अंगुष्ठ–पर्वमध्यस्थं परिवर्तं समाचरेत्।।

तर्जनी अंगुली द्वारा माला को स्पर्श नहीं करना चाहिये। माला को बार–बार हिलाना या झटका देना उचित नहीं है। अनामिका एवं मध्यमा के मध्य में माला को रखकर अंगूठे से माला फिरानी चाहिये।

अन्यत्र च–

तर्जन्यां न स्पृशेत् सोऽयं मुक्तिदो गणन–क्रमः।
भुक्तौ मुक्तौ तथाकृष्टौ मध्यमायां जपेत् सुधीः।।

अन्यत्र भी लिखा है कि – तर्जनी उंगली द्वारा माला को स्पर्श न करे। इस प्रकार जप करने से मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है। भुक्ति, मुक्ति और सकाम कार्य (आकर्षण) हेतु भी मध्यमा पर माला को स्थापित करके जप करना ही बुद्धिमानी है।

यदि वा यम–लोपः स्याज्जपादिषु कथञ्चन।
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम्।।

किसी प्रकार के दोष के प्रायश्चित के विषय में कहा है कि–नाम जप करते–करते यदि कभी नियम भंग या अन्य कोई दोष हो जाय तो विष्णु मन्त्र का जप करना चाहिये अथवा निरन्तर विष्णु का स्मरण करना चाहिए। किसी प्रकार का नियमभंग होने पर प्रायः वैष्णव जन, विष्णु–विष्णु' कहते हैं। इससे उनका दोष निवारण होकर प्रायश्चित सम्पन्न हो जाता है।

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात् तस्य भेदान्निबोधयत।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधा मतः।।
त्रयाणां जप यज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः।
यदुच्च–नीच–स्वरितैः स्पृष्टशब्दवदक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्व्यक्तं जपयज्ञः स वाचिकः।।

श्रीनृसिंहपुराण में वर्णित है किः जप यज्ञ तीन प्रकार का होता है। इनके अन्तर अथवा भेद का श्रवण करो। वाचिक, उपांशु, मानसिक नामक तीन प्रकार जप का होता है। इन तीनों में क्रमशः तीनों एक दूसरे से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने जाते हैं। अर्थात् वाचिक से उपांशु श्रेष्ठ है और उपांशु से मानसिक श्रेष्ठ है।

उच्च, नीच, स्वरित अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, स्वरित नामक स्वरों में स्पष्ट शब्द उच्चारण युक्त जो जप होता है उसे वाचिक जप कहते हैं। अर्थात् जोर–जोर से बोलकर

लय में जो जाप किया जाता है वह वाचिक कहलाता है।

शनैरुच्चारयेन्मत्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः।।

मन्त्र का धीरे–धीरे उच्चारण किया जाय, दोनों होंठ चलते रहें, और शब्द का उच्चारण ऐसा हो जो स्वयं को सुनाई भी दे, ऐसा जप उपांशु जप कहलाता है। इस जप में जप तो होता ही है। कानों में ध्वनि पड़ने से स्मरण भी होता है। यह वाचिक जप से श्रेष्ठ है।

धिया यदक्षर–श्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात् पदम्।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः।।

बुद्धि द्वारा अथवा मन द्वारा मन्त्र के अक्षर एवं शब्दों का ध्यान एवं इनके अर्थ का चिन्तन करते हुए मन–मन में मन्त्र का दुहराना या जप करना मानसिक जप है। इसमें जप के साथ–साथ ध्यान भी हो जाता है।

उपांशु जप युक्तस्य तस्माच्छतगुणोभवेत्।
सहस्रो मानसः प्रोक्तो यस्माद् ध्यान समो हिसः।।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा है कि वाचिक जप से उपांशु जप सौ गुना श्रेष्ठ होता है और उपांशु जप से हजार गुना श्रेष्ठ होता है मानसिक जप; क्योंकि मानसिक जप में ध्यान भी समाहित है। यह जप ध्यान के समान श्रेष्ठता वाला है।

गौ-सेवा

गवानुगमनं कार्यं गो ग्रासं गो प्रदक्षिणम्।
नित्यं तासु प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति।।

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि–प्रतिदिन गायों का अनुगमन (अर्थात् गौ सेवा) गो–ग्रास (अर्थात् गायों को भोजन) और गायों की परिक्रमा करनी चाहिए। ऐसा करने से प्रतिदिन गायों के प्रसन्न होने से गोपाल (भगवान् श्रीकृष्ण) भी प्रसन्न होते हैं। (हमारे इष्ट गोपाल भगवान् श्रीकृष्ण हैं और गोपाल की इष्ट गौएँ हैं, अतः गौ सेवा अवश्य करनी चाहिए।)

अष्टादश विलास

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः सर्वज्ञतां ब्रजेत्।
स चैतन्यदेवो मे भगवान् संप्रसीदतु।।

जिनकी कृपा से अथवा जिनकी प्रसन्नता से अज्ञ यानि मूर्ख व्यक्ति भी तुरन्त ही, तत्काल ही सर्वज्ञ बन जाता है, ऐसे श्रीचैतन्यदेव मुझ पर प्रसन्न हों।

श्री विग्रह स्थापना

अंगुष्ठ पर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु।
गृहे वै प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः।।

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि–यदि अपने घर या निवास में प्रतिमा स्थापित करनी हो तो अंगूठे से कन्नी उंगली तक की लम्बाई तक की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए। इससे बड़ी प्रतिमा की स्थापना नहीं करनी चाहिए। अँगूठे से कन्नी उंगली तक की लम्बाई को बोलचाल की भाषा में एक बिलस्त बोला जाता है।

एकोनविंश विलास

श्रीचैतन्यं प्रविष्टोऽस्मि शरणं सुष्ठु येन हि।
आविष्टो याति दुष्टोऽपि प्रतिष्ठांसदभिष्टुताम्।।

जिनकी पूजा आदि में आविष्ट होकर अर्थात् जिनकी पूजा अर्चना करने के कारण दुष्ट व्यक्ति भी सज्जनों द्वारा सम्मान प्राप्त करता है, मैं उन्हीं श्रीचैतन्यदेव (की पूजा आदि) में प्रविष्ट होकर उनकी शरण ग्रहण करता हूँ।

मूर्ति-प्रतिष्ठा फल

स्थापितां प्रतिमां विष्णोः सम्यक् सम्पूज्य मानवः।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।।
यथोक्तविधिना देवं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम्।
अक्षयं लोकमाप्नोति विष्णोरमिततेजसः।।

श्रीविष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि—विष्णु (श्रीहरि) की मूर्त्ति की स्थापना करके यथाविधि उनका पूजन (प्रतिष्ठा) करके मनुष्य जिस-जिस उत्तम विषय-वस्तु की कामना करता है, उसे प्राप्त करता है। यथाविधि जनार्दन भगवान् श्रीहरि की श्रीमूर्त्ति की प्रतिष्ठा करके वह श्रीविष्णु के अपार तेजोमय अक्षय लोक को भी प्राप्त करता है।

विंश विलास

कथञ्चन स्मृते यस्मिन् दुष्करं सुकरं भवेत्।
विस्मृते विपरीतं स्याच्छ्रीचैतन्यं नमामि तम्।।

जैसे-कैसे भी जिनको स्मरण करने मात्र से दुष्कर कार्य भी सहज हो जाते हैं, और भूलने से इसका उलटा हो जाता है—ऐसे श्रीचैतन्यदेव को मैं नमन करता हूँ।

जीर्णोद्वार

मूलाच्छतगुणं पुण्यं प्राप्नुयाज्जीर्णकारकः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जीर्णस्योद्धारमाचरेत्।।

देवीपुराण में लिखा है कि—नया मन्दिर बनाने की अपेक्षा प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने से सौ गुना पुण्य प्राप्त होता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके जीर्णोद्धार कार्य कराना चाहिए।

पाप पुण्य और विधिनिषेध

न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः।
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम्।।

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध में वर्णित है—मेरे एकान्त भक्त, जो कि प्रकृति से अतीत हैं, समचित्त हैं, और साधु हैं, विधि एवं निषेध से उत्पन्न पाप व पुण्य उनको स्पर्श नहीं करते हैं।

यथाकथमपि श्रीमान श्रीकान्तं समुपाश्रितः।
कुरुतेऽखिलपापानां प्रलयं किं पुनर्व्रतैः।।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में वर्णित है कि—येन केन प्रकारेण अर्थात् किसी भी साधन से श्रीपति, लक्ष्मीपति, श्रीहरि का आश्रय ग्रहण करने पर मनुष्यों के अखिल यानि समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर अन्य व्रत आदि करने की उन्हें क्या आवश्यकता है।

भावार्थ है कि श्रीहरि की शरण ग्रहण करने अथवा श्रीहरि की भक्ति करने के पश्चात् किसी व्रत आदि को करने की कोई आवश्यकता नहीं है। समस्त व्रतादिक का फल श्रीहरिभक्ति में ही समाहित है।

सदा सदाचार पुरास्तु ये नरा
भवन्ति दामोदर–भक्त्यपेक्षया।
तदीयपादाम्बुज–धूलिधूसरं कदा
भवेदस्य शिरोऽधमस्य मे।।

विष्णुरहस्य में श्रीनारद एवं श्रीब्रह्मा जी के संवाद में वर्णित है कि भगवान् श्रीदामोदर की भक्ति प्राप्ति की अपेक्षा या आशा में जो जन सदा ही सदाचार–परायण रहते हैं, मुझ अधम का यह मस्तक उनके चरण कमलों की धूलि से कब धूसरित होगा? कब अलंकृत होगा?

अर्थात् सदाचरण भी भक्ति प्राप्ति की आशा से किया जाय, पुण्य या पाप नाश की आशा से नहीं। ऐसे सदाचारी भक्तों की पद–धूलि की कामना कर रहे हैं। ऋषिवर नारद।

श्रीनन्दसुन्दरमुकुन्द पादारविन्द
प्रेमामृताब्धिर–रसतुन्दिलमानसा ये।
नानार्थ–वृन्दमनुसन्दधते न च स्वं,
तेषां पदाब्ज–मकरन्द–मधुव्रतः स्याम्।।

जिनका ह्रदय नन्दनन्दन श्री मुकुन्द के चरण–कमलों के प्रेम–रस समुद्र से परिपूर्ण होकर अन्य किसी अपने विषय का अनुसंधान या खोज या चिन्तन नहीं करता है, उनके पाद–पद्मों के मकरन्द के पान करने वाला भ्रमर या भौंरा होने की मेरी अभिलाषा है।

एक सन्त के शिष्य ने आकर पूछा–गुरुदेव! कल मैंने एक बहुत ही चमत्कारिक स्वप्न देखा। आप कृपया इसका कारण व अर्थ समझाने की कृपा करें। मैंने देखा कि आप और आपके अनेक अनुयायी प्रसिद्ध सन्त श्री साईंबाबा से शास्त्रार्थ कर रहे हैं। गहन विचार विमर्श के बाद अन्त में साईंबाबा ने प्रणाम पूर्वक आपसे क्षमा मांगी और आपको भगवान् का प्रमुख सेवक स्वीकार किया, अपने से श्रेष्ठ स्वीकार किया और मेरी निद्रा टूट गयी। उठा तो प्रातःकाल का समय था।

सन्त ने कहा–एक तो स्वप्न यथार्थ होता ही नहीं। दूसरा इस स्वप्न का न तो कोई अर्थ है न चमत्कार। हाँ एक कारण अवश्य है। वह स्पष्ट है कि तुम मेरे शिष्य हो। साईंबाबा के होते तो यह स्वप्न उल्टा होता। यह केवल मात्र तुम्हारा अहंकार है कि तुम मेरे शिष्य हो तो जीत मेरी ही होनी चाहिये। तुम अपने अहंकार के खेलों को समझने की कोशिश करो। यह तुम्हारा अहंकार नये–नये रूप ले रहा है। तुम मेरे शिष्य हो। मैं हारा तो तुम हारे। मैं जीता तो तुम जीते। तुम्हें मेरी हार–जीत की फिकर नहीं है। तुम्हें तुम्हारी हार–जीत की चिन्ता है। सन्त तो न जीतते हैं, न हारते हैं। जो जीत–हार में फंसा वह सन्त कैसा? अतः सावधान! अपने अहंकारों को पहचानो। स्वप्न में भी ये तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ते।

श्रीश्रीहरिभक्तिविलास...

वैष्णव आचरण का संविधान है यह ग्रन्थरत्न।
साधन सम्बन्धी विविध प्रश्नों एवं समस्याओं का
वैदिक प्रमाणों द्वारा समाधान किया गया है इस ग्रन्थरत्न में।

यह ग्रन्थ एक संकलन है- विभिन्न पुराण, उपपुराण
व संहिताओं का। इसमें किसी भी एक विषय पर
विभिन्न पुराणों अथवा वैदिक ग्रन्थों में दिये गये आदेश या
निर्णयों को एक स्थान पर संकलित किया गया है।

किसी भी विषय की जिज्ञासा या संशय अथवा
विवाद की स्थिति में 'श्रीहरिभक्तिविलास' का निर्णय
सर्वमान्य होता है।

वैदिक एवं पौराणिक प्रमाणों से युक्त होने के कारण
केवल गौड़ीय या श्रीचैतन्य सम्प्रदाय ही नहीं,
अपितु अन्य समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों द्वारा भी यह
आचार-संहिता ग्रन्थ पूर्णरूपेण समादृत है।

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन